वक्तव्य

यह पुस्तक हमारे बहुत से ऐतिहासिक परिषदों और पत्रिकाओं के लिये लिखेगये लेखों पर आधारित है। इन लेखों में हमने मौर्य समय के इतिहास पर बहुत कुछ नया प्रकाश डाला है। यह लेख अंग्रेजी में लिखे गये हैं और इनका स्वरूप संशोधनात्मक है। इनका हिन्दी अनुवाद और इनको इस पुस्तक के रूप में परिणत करने का कार्य हमारे प्रिय भ्राता कैलाशचन्द्र सेठ की सहायता ही से हुआ है।

उन पाठकों की सुविधा के लिये जो हमारे अंग्रेजी में लिखे असली लेखों का पठन करना चाहेंगे हम नीचे इनकी सूची देते हैं।

(1) Was Porus the Victor of the Battle of Jhelum? Second Indian History Congress 1938.
(2) Kingdom of Khotan (Chinese Turkestan) under the Mauryas. Eighth International History Congress. Indian Historical Quarterly Vol. XV.
(3) Buddha Nirvana and some other dates in ancient Indian Chronolgy. Second Indian Culture Conference. Indian Culture. January 1939.
(4) Identification of Parvataka and Porus. Ninth All India Oriental Conference. Indian Historical Quarterly.
(5) Gandhara Origin of the Maurya Dynasty and the Identification of Candragupta and Sasigupta. Ninth All-India Oriental Conference.
(6) Did Candragnpta Maurya belong to North-Western India? Annals of the Bhandarkar Orienal Research Institute Vol. XVIII. Part II.
(7) Candragupta and Sasigupta. Indian Historical Quarterly. Vol. XIII. Pt. 2.

(8) Central Asiatic Provinces of the Mauryan Empire. Indian Historical Quarterly Vol XIII Pt 3

(9) Vrisala the Greek Kingly title of Candragupta Indian Historical Quarterly Vol XIII No 4

(10) Inscriptional Evidence of Candragupta Maurya's Achievements Journal of Indian History Vol XVI Pt 2

(11) Chronology of Asokan Inscriptions Journal of Indian History Vol XVII Part 3

(12) Sidelight on Canakya New Indian Antiquary Vol I No 4

(13) Spurions in Kautalya's Arthasastra Thomas Commemoration Volume New Indian Antiquary.

(14) Candragupta Maurya and the Meharauli Iron Pillar Inscription. New Indian Antiquary

(15) Origin of Pali. Nagpur University Journal No 2

*(16) Routing of Alexander from India Indian Review June 1937

(17) Asoka the Great Triveni Vol XI No 6

(18) Date of Chandragupta Maurya's Accession Third Indian History Congress 1939

(19) Sidelights on Asoka Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute

(20) Vrisala Indian Historical Quarterly Vol XV

इन सब लेखों का उनके असली स्वरूप में ही संग्रह हमने एक पुस्तक New Light on the History of the Great Mauryas में किया है, जो शीघ्र Oriental Book Agency Poona द्वारा प्रकाशित होने वाली है।

हरिश्चन्द्र सेठ

* इसी आशय का लेख, एलेक्ज़ेंडर की भारत में पराजय और दुर्गति, हमने कुछ वर्ष हुए हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सम्मुख उपस्थित किया था, और बाद में यह लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८ अंक ४, में प्रकट हुआ है।

विषय सूची

—0—

अध्याय १

परशिया के साम्राज्य और एलेक्ज़ेन्डर का परिचय।

चन्द्रगुप्त मौर्य के समय के इतिहास का परशिया (ईरान) के महान् साम्राज्य और एलेक्ज़ेन्डर (सिकन्दर) द्वारा उसके छिन्न भिन्न होने की घटनाओं के साथ बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। मौर्य समय के इतिहास को ठीक ठीक समझने के लिये इन दोनों का संक्षिप्त परिचय अति आवश्यक है।

ईसवी सम्वत् के पूर्व की छटवीं शताब्दि के मध्यकाल में महान् आर्य सम्राट् कुरुप[1] ने मध्य एशिया से लेकर मेडिटरेनियन के छोर तक एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया, जिसके अन्तर्गत पुराने समय के बेबिलोनिया, मीडीया, लीडीया आदि राज्य सम्मिलित होगये थे। कुरूप के पश्चात् इस विशाल साम्राज्य का उत्तराधिकारी उसका पुत्र कम्बोजीय (जिसको योरोपीय विद्वानों ने केम्बीसस के नाम से पुकारा है) हुआ। उसने सुदूर इजिप्ट देश को जीनकर विशाल परशियन साम्राज्य में मिलाया।

---

(१) कुरुप को योरोपीय विद्वानों ने सायरस के नाम से पुकारा है। बहिस्तुन और नक्शरुस्तम के प्राचीन उत्कीर्ण लेखों से पता लगता है कि कुरुप और उसके वंशज बड़े गर्व से अपने को आर्य और क्षत्री कहते थे। हमने इन परशिया के सम्राटों के नामों को उन्हीं की भाषा की रीति से पुकारा है।

कम्बोजीय के पश्चात् उसही के वंश का दारयवुश (जिसको योरोपीय विद्वानों ने डेरियस के नामसे पुकारा है) परशिया के साम्राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। कुरुष के समान दारयवुश भी संसार के इतिहास में एक बहुत बड़ा सम्राट् हुआ है। विशाल परशियन साम्राज्य के शासन की उसने बहुत अच्छी व्यवस्था की, और उसके समय में वह साम्राज्य पराकाष्ठा पर पहुंच गया। दारयवुश ने स्वयं योरप के ऊपर चढ़ाई कर वहां का दक्षिण-पूर्वीय एक बड़ा भाग, थ्रास (आधुनिक बल्गेरिया) मेसेडोनिया आदि, जीतकर अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया। दारयवुश तो इन विजयों के बाद परशिया लौट गया। उसके वहां से लौट आनेके पश्चात् उसकी फौजें समस्त ग्रीस को भी विजय करने को आगे बढ़ीं पर उन्हें सफलता न प्राप्त हुई। दारयवुश पुनः ग्रीस के जीतने की तैयारी कर रहा था पर इतने ही में अभाग्यवश उसकी मृत्यु होगई। इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि यदि दारयवुश थोड़े दिन और जीवित रहता तो वह अवश्य समस्त ग्रीस आदि को भी जीत कर अपने साम्राज्य के अन्तर्गत करलेता। उसके सुव्यवस्थित शासन के वहां फैलने पर बाद की बहुत सी खूं रेज़ी बच जाती।

दारयवुश के पश्चात् उसही के वंश का शयर्श परशिया के साम्राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। दारयवुश के समान योरप को जीत-कर और योरप और एशिया को एक ही शासन के अन्दर सम्मिलित कर एक संसार-साम्राज्य बनाने की शयर्श की भी एक महान् आकांक्षा थी। पर वह अपने पूर्वजों कुरुष और दारयवुश के समान विजेता न था, और इस महान् कार्य को पूरा करने की उसमें सामर्थ्य न थी।

अपनी जल और स्थल सेना लेकर उसने ग्रीस पर चढ़ाई की। और उसकी बहुत सी रियासतो को जीतते हुए उसने ग्रीस की मुख्य रियासत एथेन्स को भी जीता। इस प्रकार थोड़े समय के लिये वह एशिया के एक बड़े भूखण्ड के अतिरिक्त उस समय के सभ्य योरप के भी भाग्य का विधाता बन गया। परन्तु उसकी ग्रीस की विजय स्थायी न रही। एथेन्स के लेने के थोड़े दिन बाद सेलेमिस के युद्ध में उसकी जल सेना की हार हुई और वह स्वयं ग्रीस की विजय को पूरा करने का भार अपनी स्थल सेना पर छोड़ परशिया वापिस आगया। इसके थोड़े दिनों बाद उसकी स्थल सेना की भी हार प्लेटिया के संग्राम में हुई। सेलेमिस और प्लेटिया के युद्धके पश्चात् परशिया के साम्राज्य का प्रभाव उसमें सम्मिलित योरप के प्रदेशों पर कम होने लगा, और वास्तव में इसही के पश्चात् उस विशाल साम्राज्य का अपकर्ष भी शुरु होगया। पर शयर्श के बहुत वर्षों बाद तक पश्चिम एशिया में विशाल परशियन साम्राज्य कायम रहा, और कुरुष के वंशज ही उसके सम्राट् बने रहे।

शयर्श के बाद अतिशयर्श, शयर्श द्वितीय, दारयवुश द्वितीय, अर्तशयर्श द्वितीय, और अर्तशयर्श तृतीय सम्राट् हुए, पर उनके समय में परशियन साम्राज्य अपने पूर्व के उत्कर्ष पर न पहुंच सका, और उसकी दशा दिन प्रति दिन बिगड़ती चली गयी। उसकी कमज़ोरियों की बात सारे ग्रीस देश को कितने ही लोगो ने बताई और यह विश्वास दिलाया कि थोड़े ही परिश्रम से वह बड़ा साम्राज्य छिन्नभिन्न किया जा सकता था। जिस समय एलेक्ज़ेन्डर ने इस

साम्राज्य पर आक्रमण किया। उस समय दारयवुश तृतीय उसका सम्राट् था। वह बहुत सज्जन परन्तु अति का शक्तिहीन शासक था।

अब हम थोड़ा सा योरप के उन प्रदेशों की ओर ध्यान देते हैं जिनको महान् दारयवुश प्रथम ने जीते थे। दायर्श के ग्रीस के ऊपर असफल आक्रमण के पश्चात् धीरे धीरे से परशियन शासन योरप में ग्रास, मेसेडोनिया आदि रियासतों से भी उठ गया, इसके पश्चात यह आपस में सदैव के समान लड़ती रहीं। और उनके आपस के वैमनस्य की अग्नि बहुधा परशियन साम्राज्य के भेजे हुए द्रव्य से और भी अधिक दहकाई जाती थी। परन्तु ईसवी पूर्व की चौथी शताब्दि के मध्यकाल में फ़िलिप्स नाम का राजा मेसेडोनिया के सिंहासन पर बैठा। जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं यह वही मेसेडोनिया था, जिसको महान् दारयवुश ने जीत कर अपने साम्राज्य के अन्तर्गत किया, और कितने ही वर्षों तक मेसेडोनिया के राजा परशियन सम्राट् को अपना अधिपति मानते रहे और उन्हें कर देते रहे थे। अब फ़िलिप्स ने थोड़े समय के अन्दर ही मेसेडोनिया को एक शक्तिशाली राज्य में परिणत कर दिया और वह अपने पराक्रम से सारी ग्रीस की रियासतों का अगुआ भी बन गया। फ़िलिप्स ने एशिया में आकर परशियन साम्राज्य के ख़िलाफ़ युद्ध करने की भी ठान ली। परशियन साम्राज्य किस अधोगति को पहुंच गया था और उसकी कैसी बुरी दशा थी, यह तो उस समय सबही जानते थे। उसके विरुद्ध संग्राम कर उसको छिन्नभिन्न करना अब कोई बड़ा काम न रह गया था। बड़े उत्साहपूर्वक फ़िलिप्स ने इस आक्रमण के लिये तैयारी

करना शुरु कर दी। पर इस ही बीच में वह मार डाला गया।

फ़िलिप्स की मृत्यु के पश्चात् ३३६ बी सी में उसका पुत्र एलेक्ज़ेन्डर मेसेडोनिया के राज्य सिंहासन पर बैठा। उसके हाथ अपने पिता का सुदृट राज्य ही नहीं लगा, परंतु उसकी सुसंगठित सेना भी उसे मिली। दो एक वर्ष अपने पैतृक राज्य की व्यवस्था ठीक करने के पश्चात् अपने पिता की परशियन साम्राज्य के ऊपर आक्रमण करने की अपूर्ण चेष्टा को पूरा करने के लिये एलेक्ज़ेन्डर परशिया की ओर बढ़ा। दो तीन सग्रामो में उसने दारयवुश तृतीय को विना किसी कठिनाई के हरा दिया। इसके पश्चात् अपनी जान बचाते हूए सम्राट् दारयवुश का पीछा करने और उसके साम्राज्य के सुदूर भागों को अपने कबज़े मे करने के लिये एलेक्ज़ेन्टर ने इधर उधर घूमना शुरु किया।

दारयवुश भी इसके बाद बहुत दिनों तक जीवित नहीं रहा। उसकी कमजोरियों और नाक़ाबलियत से तग आकर उसही के सेनापतियों ने उसको मार डाला, और बेसस नाम के बैक्ट्रिया (प्राचीन संस्कृत साहित्य का वाह्लीक य आधुनिक बल्ख) के क्षत्रप को अपना सम्राट बनाया। मालूम होता है कि केवल पूर्वीय परशिया के निवासियो ने ही दृढ़ता पूर्वक अपनी स्वतन्त्रता के लिये एलेक्ज़ेन्डर के खिलाफ़ युद्ध किया, पर एलेक्ज़ेन्डर ने बेसस को हरा दिया और उसके पकड़े जाने पर स्वतंत्रता के उपासक इस महान व्यक्ति का बडी क्रूरता से वध करवाया। बेसस की मृत्यु के बाद भी पूर्वीय परशिया के निवासी स्वतंत्रता का युद्ध लड़ते रहे पर उनके

विरोध में अब अधिक जान न रह गई, उनके विरोध का यह अवश्य फल हुआ है कि परशिया के पूर्वीय प्रान्तों को एलेक्ज़ेन्डर पूरी तरह से अपने कब्ज़े में न कर सका।

बैक्ट्रिया में बेसस को हरा कर एलेक्ज़ेन्डर ३२७ बी सी में हिन्दुकुश के नीचे आधुनिक चारिकार के पास आया। यहां से उसका भारत के विरुद्ध संग्राम शुरू होता है।

अध्याय २

पश्चिमोत्तर भारत में एलेक्ज़ेन्डर का संग्राम।

दुर्भाग्य वश हमें एलेक्ज़ेन्डर के आक्रमण का कोई भी भारतीय विवरण प्राप्त नहीं है, जिससे कि प्राचीन योरोपीय ऐतिहासिकों द्वारा लिखित उसके आक्रमण के एकांगी वृत्तान्त का संशोधन हो सके। योरोपीय साहित्य में एलेक्ज़ेन्डर के जीवन सम्बन्धी अनेक विखण्डित प्रसंगों के अलावा, हमें पांच शृंखलाबद्ध वृत्तान्त प्राप्त हैं। वे एरियन, डायोडरस, प्लुटार्क, कर्टियस, और जस्टिन के हैं। जैसा कि अंग्रेज़ इतिहासकार फ्रीमैन ने लिखा है, " दुर्भाग्यवश, पांचो में से कोई भी समकालीन इतिहासकार नहीं है, इस पर भी इन पांचो में से केवल एरियन ही का नाम किसी प्रकार समालोचको की श्रेणी में रखा जा सकता है। डायोडरस विश्वासनीय हो सकता है, परन्तु इसके साथ ही साथ उसकी मूर्खता का पार पाना कठिन है। प्लुटार्क जैसा कि वह स्वयं ही अपने विषय में लिखता है कोई इतिहासकार नहीं था। ऐतिहासिक तथा सांग्रामिक घटनाओं का ठीक ठीक विवरण देने की अपेक्षा उसका कार्य शिक्षार्थ ऐतिहासिक कहानियों का संकलन करना था। जस्टिन एक ढीला–ढाला और लापरवाह संक्षिप्त कर्ता था। और कर्टियस तो

एक रोमांचकारी लेखक था'''[१]। योरोपीय लेखकों ने एलेक्ज़ेन्डर को समस्त लड़ाईयों का विजेता बनाने की चेष्टा की है, परन्तु ऐसा करने पर भी वे यह नहीं छिपा सके कि एलेक्ज़ेन्डर का भारतीय आक्रमण बुरी तरह से असफल रहा। उन्हीं के कथनों को ध्यान पूर्वक पढ़ने से विदित होता है कि उसको भारत से हार ही मान कर भागना पड़ा।

भारत पर एलेक्ज़ेन्डर के आक्रमण को हमने तीन भागों में बाटा है। (१) पश्चिमोत्तर भारत के हिन्दुकुश तथा सिन्ध नद के मध्यवर्ती प्रदेश पर उसका आक्रमण (२) सिन्ध नद का पार करना और झेलम नदी के किनारे पर उसका और पोरस का युद्ध (३) झेलम के युद्ध के बाद की घटनाएं।

हिन्दुकुश तथा सिन्ध नद के मध्यवर्ती प्रदेश में उस समय क्षत्रिय जाति अश्वक (जिन्हें ग्रीक लेखकों ने अस्कनोइ, अस्पसोइ आदि नामों से अभिहित किया है) निवास करती थीं। अश्वकों ने बड़ी उग्रता से एलेक्ज़ेन्डर के मार्ग का अवरोध किया। उसे उनके विरुद्ध निरतर नौ महीने तक युद्ध करना पड़ा, परन्तु फिर भी वह उन्हें पूर्ण रूप से वशीभूत करने में असफल रहा। एलेक्ज़ेन्डर ने यहाँ बड़े बड़े अमानुषीय अत्याचार किये। यहा भी उसने परशिया के टायर और परसोपोलिस के समान अनेक समृद्धि-शाली नगरो को जलवाया। कितने ही स्थानो पर यहां के निवासी, जिन में स्त्रिया और बच्चे भी सम्मिलित थे, तलवार के हवाले कर

(१) Historical Essays

दिये गये। हूणों के समान एलेग्ज़ेन्डर के पाशविक अत्याचारों ने यहां के लोगों के हृदयों से उसके प्रति सहानुभूति का नितान्त लोप कर दिया। अश्वक किसी एक स्थान पर एकत्र हो कर शत्रु का सामना न कर सके। एलेक्ज़ेन्डर ने जन और धन का नाश करनेवाले साधन सब जगह जुटा रखे थे; अतः उन्हें प्रत्येक स्थान की रक्षा करनी पड़ी। उन्होंने एलेक्ज़ेन्डर का अन्तिम सामना आरनस के किले पर किया। यह सिन्ध नद के समीप सुदृढ़ गढ़ था। कुछ दिनों के घेरे के पश्चात् अश्वक पहाड़ों के अन्तराल में चले गये। ऐसी दशा में एलेग्ज़ेन्डर ने किले पर तो अधिकार पाया, परन्तु जैसा कि कर्टियस लिखता है " उसने केवल स्थान पर ही विजय पायी, शत्रु पर नहीं "। एलेक्ज़ेन्डर ने आरनस को शशिगुप्त नामक एक भारतीय के अधिकार में छोड़ दिया। शशिगुप्त को एरियन ने अश्वकों का क्षत्रप कहा है। स्पष्ट रूप से शशिगुप्त उस प्रदेश के किसी राजवंश का व्यक्ति था। एलेक्ज़ेन्डर की यह नीति थी कि जिस स्थान पर वह विजय प्राप्त करता था, उसको वह वहीं के पराजित शासक या उसी प्रदेश के उसके ही समान प्रभावशाली अन्य किसी व्यक्ति के संरक्षण में कर देता था। यही केवल एक ऐसा उपाय था जिसके द्वारा वह आगे बढ़ने में नितान्त अपरिचित विदेशियों से सहायता प्राप्त कर सकता था। जान पड़ता है कि शशिगुप्त अत्यधिक उत्साही और अवसर उपयोगी व्यक्ति था। वह एलेक्ज़ेन्डर के विरुद्ध परशियनों की सहायता करने बेकृ्ट्रिया गया था। जब परशियन अन्तिम युद्ध

में पराजित हुए तो वह एलेक्ज़ेन्डर से जा मिला। एलेक्ज़ेन्डर ने सिन्ध नद के पश्चिम में स्थित, युद्ध की दृष्टि से अति उपयोगी आरनस के संरक्षण का भार उसे सौंपा। यह आरनस पजाब से परशिया जाने वाले मार्ग का नियंत्रण करता था। हिन्दुकुश और सिन्ध नद के मध्यवर्ती प्रदेश की एलेक्ज़ेन्डर के वहा से आगे जाने के बाद की घटनाओं को समझने के लिये हमें तीन व्यक्तियों पर विचार करना होगा (१) शशिगुप्त (२) एलेक्ज़ेन्डर का हिन्दुकुश के तटवर्ती प्रदेश का परशियन क्षत्रप ट्रायसपीज़ (३) एलेक्ज़ेन्डर का एक सेनाध्यक्ष, निकेनौर, जिसे वह यहा छोड़ गया था।

अध्याय ३

झेलम के युद्ध का विजेता कौन था।

पिछले अध्याय में हम यह बता आये हैं कि झेलम के युद्ध के पहिले पश्चिमोत्तर भारत में एलेक्ज़ेन्डर को एक सुदृढ़ विरोध का सामना करना पड़ा था, जिसके कारण उसको लगभग नौ महीने तक वहां घोर युद्ध करना पड़ा और तिसपर भी वहां की स्वतंत्रता प्रिय और वीर जातियों को वह पूरा पूरा न हरा सका। पेशतर इसके कि वह प्रदेश ठीक ठीक उसके अधिकार में आसका हो उसने अपनी अधिकांश सेना सहित सिन्ध नदी पार कर डाली। उसके पूर्वीय किनारे पर स्थित तक्षशिला देश के नरेश आम्भी से मित्रता कर लेने के कारण, सिन्ध नद के पार करने में एलेक्ज़ेन्डर को कठिनायी न हुई। आम्भी के इस नीच और देश द्रोहात्मक आचरण का कारण अपने शक्तिशाली पड़ौसी पोरस के प्रति उसकी द्वेष भावना थी।

पोरस की एलेक्ज़ेन्डर के भारत में आने से पूर्व ही अपने पड़ौसी अभिसार नरेश से मित्रता थी। और इन दोनों ने मिलकर आसपास के प्रदेश जीतने शुरु कर दिये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि अब अभिसार नरेश कुछ अनिश्चित था कि वह एलेक्ज़ेन्डर या अपने पुराने मित्र पोरस का साथ दे कर अपने भाग्य को

परखे। अभिसार नरेश सिन्ध नद के पश्चिम में निवास करने वाले अपने पड़ोसी अश्वकों से भी मित्रता स्थापित कर चुका था। उसने एलेक्ज़ेन्डर के विरुद्ध अश्वकों की सहायता के लिये सेना भेजी थी, और सिन्ध नद के पश्चिम से भागे हुए लोगों को अपने यहां आश्रय भी दिया था। एलेक्ज़ेन्डर के सिन्ध नद पार करने पर उसने उसे उपहार भेजे, परन्तु साथ साथ उधर उसके भेजे हुए दूत को उसने कैद कर लिया, और पोरस से जा मिलने की तैयारी करने लगा। एलेक्ज़ेन्डर को उसकी दोहरी चाल का पता लग गया, और पूर्व इसके कि अभिसार नरेश पोरस से जा कर मिलता, एलेकज़ेन्डर और आम्भी शीघ्रता से अपनी सेनाओं सहित झेलम के तट पर पोरस के सम्मुख आ डटे।

इस प्रकार पोरस अकेला रह गया। एलेक्ज़ेन्डर की सेना पोरस की सेना से कई गुणा अधिक थी। जैसा कि प्लुटार्क से हमें ज्ञात होता है एलेक्ज़ेन्डर ने १२०००० पैदल और १५००० घुडसवारों के साथ भारत में प्रवेश किया। इसके अतिरिक्त झेलम के युद्ध मे उसके साथ तक्षशिला की सेना भी थी। प्लुटार्क के अनुसार पोरस के पास केवल २०००० पैदल और २००० घुडसवार थे। फिर भी पोरस उसका एक शक्तिशाली शत्रु था। प्रारम्भ से ही एलेक्ज़ेन्डर को झेलम का युद्ध अति कठिन प्रतीत हुआ। पोरस की उपयुक्त रूप से व्यवस्थित सेना के मुकाबिले में झेलम को पार करना ही एलेक्ज़ेन्डर को असाध्य हो गया। जैसा कि कार्टियस से हमे मालूम होता

है, "एलेक्ज़ेन्डर की कुछ सेना नदी के मध्य में स्थित एक द्वीप पर पहुंच गयी। परन्तु उसे शत्रुओ ने घेर लिया, जो अविदित रूप से उस द्वीप तक तैर गये थे। इन लोगो ने यवन सैनिको पर वार कर उन्हें धराशायी किया। जो बच भी गये वे या तो धारा के तेज़ प्रवाह मे बह गये या नदी की भंवर में वहीं बैठ गये। पोरस ने नदी के किनारे खड़े हो कर युद्ध के इस समस्त उतार चढ़ाव को देखा और उस पर उसका आत्म विश्वास खूब बढ़ गया"।

एरियन ने पोरस के पुत्र के साथ एलेक्ज़ेन्डर के प्रारम्भिक युद्ध का निम्न विवरण दिया है। "कई दिन की प्रतीक्षा के बाद एक दिन एलेक्ज़ेन्डर रात्रि के निबिड अंधकार में नदी पार कर गया। भारतीय युवराज के हाथो वह घायल हुआ और उसका घोड़ा बुकाफिलस मारा गया"। जस्टिन ने युद्ध के प्रारम्भिक दृश्य का कुछ भिन्न निम्न विवरण दिया है, "युद्ध के प्रारम्भ होने पर, पोरस ने अपनी सेना को एलेक्ज़ेन्डर की सेना पर आक्रमण करने की आज्ञा दी, और उसने उनके अधिपति को अपने व्यक्तिगत शत्रु के रूप में मांगा। इस पर एलेक्ज़ेन्डर ने युद्ध में सम्मिलित होने मे कोई विलम्ब नहीं की, परन्तु प्रथम ही वार में उसका घोड़ा मारा गया। एलेक्ज़ेन्डर सिर के बल पृथ्वी पर आ पड़ा पर उसके अनुचरो ने उसे बचा लिया जोकि उसकी-सहायता के लिये तुरन्त वहां पहुंच गये थे"।

मुख्य युद्ध की घटनाओं के बारे में हमे ज्ञात होता है कि युद्ध दिवस के अवसान तक चलता रहा, और पोरस के हाथियों द्वारा युनानी सेना बुरी तरहसे नष्ट हुई। जैसा कि कर्टियस ने

लिखा है, "सबसे अधिक भयंकर दृश्य तो हाथियों द्वारा सशस्त्र सैनिकों का सूण्ड में पकड़ कर सिरों पर बैठे हुए महावतों के हाथों में सौंपना था, जो तुरन्त उनका सिर काट लेते थे। युद्ध संशयात्मक रहा कभी युनानी सेना हाथियों का पीछा करती थी, कभी उनसे भयान्वित हो वह स्वयं भाग खड़ी होती थी। इसी प्रकार युद्ध चलता रहा, यहा तक कि समस्त दिन समाप्त हो गया"। डायोडोरस से भी हमें पता चलता है कि "हाथी अपनी विशाल काया और बल के कारण बहुत लाभकारी सिद्ध हुए। बहुतसे शत्रुओं को उन्हों ने अपने पैरों तले रौंद कर मार डाला। उनके कवचों तथा हड्डियों का चूरचूरा कर दिया। शत्रु दल के अन्य बहुत से व्यक्तियों को भयानक रूप से मृत्यु के घाट उतारा। पहले उन्होंने उन्हें अपनी सूण्ड में लपेट कर उपर उठाया और फिर उन्हें बड़े जोरों के साथ पृथ्वी पर दे मारा। और बहुत से अन्य लोगों का जीवन उन्हों ने एक ही क्षण में अपने दांतों से उनके शरीरों को छेद कर समाप्त कर दिया"। एरियन ने भी इसी प्रकार उल्लेख किया है कि "विशाल काय हाथियों ने पैदल सेना पर धावा किया। जिस ओर भी वे घूम गये उन्होंने गठित युनानी पैदल सेना को कुचल डाला"। पोरस की अन्य सेनाओं के भीषण युद्ध को अलग छोड़ते हुए केवल हाथियों के विनाशकारी उक्त वृत्तान्तो के विचार से ही युनानी सेना की प्राचीन योरोपीय ऐतिहासकों की दी हुई हानि का विवरण कितना आश्चर्यजनक है। एरियन, जो कि एलग्जेन्डर के ऐतिहासिकों में बहुतही गम्भीर है, लिखता है कि झेलम के युद्ध में युनानी सेना के केवल ८० पैदल और २३० घुड़

सवार धराशायी हुए[१]। इसही प्रकार के विवरणों से एलेक्ज़ेन्डर के रोमांचकारी वीरत्व की झूठी सच्ची कहानियां बनी है, और भ्रमवश इन्हीं को ऐतिहासिक तथ्य माना गया है। एक अधुनिक योरोपीय इतिहासकार ने ठीक ही लिखा है कि झेलम के युद्ध में एलेक्ज़ेन्डर की सैन्य सम्बन्धी हानियों पर बड़ी सावधानी से आवरण डाला गया है[२]।

ऐसा प्रतीत होता है कि एलेक्ज़ेन्डर सम्बन्धी पुराने योरोपीय वृत्तान्तों में झेलम के युद्ध की एलेक्ज़ेन्डर की केवल हानियों को ही नहीं छिपाया गया है, प्रत्युत युद्ध के अन्तिम निर्णय का भी ठीक ठीक उल्लेख नहीं किया गया है। कहा गया है कि झेलम के युद्ध में पोरस की हार हुई, क्यों कि जब उसके हाथियों पर आक्रमण हुआ तो वे घायल हो कर अपनी सेना पर ही टूट पड़े और सैनिकों को अपने पैरों तले रौंदते हुये अन्त में वे भेड़ों के झुण्ड के समान रण स्थल से खदेड़ निकाले गये। यह बात मनगढ़न्त प्रतीत होती है। यदि इस बात को सच मानलें तो उसके अनुसार हाथियों की सेना युद्ध के लिये बिल्कुल अनुपयुक्त सिद्ध हुई, क्योंकि उनकी संहारकारी प्रवृत्तियों और उनके सहसा भाग उठने से उनके ही ओर वालों को हानियां उठानी पड़ीं। यदि ऐसा था तो सेल्यूकस तथा उसके अन्य समकालीन मेसेडोनियन

(१) एरियन के अनुसार भारतीय सेना के २०,००० पैदल और ३००० घुड़सवार काम आये, और समस्त रथों के टुकड़े टुकड़े उड़ गये।

(२) Cambriedge Ancient History. पुस्तक ४ पृ. ४०९.

और ग्रीक सरदार, जो एलेकजेन्डर की मृत्यु के पश्चात् एशिया में अपने राज्य स्थापना के लिये आपस में लड़े, इन हाथियों की सेना के लिये इतने लालयित न होते। इसका स्पष्ट प्रमाण मौजूद है कि हाथियों की सेना ने सफलता पूर्वक युद्ध किया। युनानी सेनानायकों और विशेषकर सल्यूकस पर इसका बहुत ही प्रभाव पड़ा। सेल्यूकस को स्वयं हाथियों के विरुद्ध युद्ध करना पड़ा था। जब वह सीरिया के राज्य का अधिकारी हुआ तो उसने युद्ध के हाथी प्राप्त करने के लिये समस्त प्रान्तों का बलिदान करदिया, और हाथी ही को उसने अपने वंश का चिन्ह बनाया। अगर यह मान भी लिया जाय कि झेलम के युद्ध में एक बार हाथियों की सेना अस्तव्यस्त हो गयी थी तो उसके साथ हमें यह भी बताया जाता है कि उनमें से अनेक स्वयं पोरस के चारों ओर लाकर एकत्रित कर दिये गये थे और पोरस ने युद्ध के लिये उनका नेतृत्व ग्रहण किया, जिसके कारण शत्रु सेना बुरी तरह से नष्ट हुई, जैसा कि डायोडोरस ने लिखा है, "पोरस जो सब से शक्तिशाली हाथी पर सवार था इस घटना को देख कर अपने चालीस हाथियों को, जो अभी नियन्त्रण में थे, अपने चारों ओर एकत्रित कर शत्रु पर टूट पड़ा और शत्रु सेना का बुरी तरह संहार किया"।

पोरस और एलेक्जेन्डर के इस युद्ध सम्बंधी निम्न एथिओपिक (Ethiopic) पाठ में सम्भवतः यह सत्य सुरक्षित है कि एलेक्जेन्डर पोरस को पराजित नहीं कर सका। "पोरस के विरुद्ध युद्ध में एलेक्जेन्डर के अधिकांश घुड़सवार मारे गये। इस कारण

उसकी सेना शोक से व्यथित हो कुत्तों के समान दैन्य स्वर में रोने और चिल्लाने लगी। सैनिकों ने अपने हाथों से हथियारों को फेंक और एलेक्ज़ेन्डर का त्याग कर शत्रु की ओर जाना चाहा। जब एलेक्ज़ेन्डर को, जो स्वयं ही बड़ी विपत्ति में था, यह विदित हुआ तो वह युद्ध को रोकने की आज्ञा देकर इस प्रकार प्रलाप करने लगा, " ओ भारतीय राजा पोरस मुझे क्षमा कर। मैं तेरे शौर्य और बल को पहिचान गया हूं। अब विपत्ति नहीं सही जाती, मेरा हृदय पूर्ण व्यथित है। इस समय मैं अपने जीवन को अन्त करने की इच्छा करता हूं, परन्तु मैं यह नहीं चाहता कि यह समस्त लोग जो मेरे साथ हैं बरबाद हों, क्योंकि मैं ही वह व्यक्ति हूं जो इन्हें यहां मौत के मुख में लाया हूं, यह एक राजा के लिये किसी प्रकार भी उपयुक्त नहीं है कि वह अपने सैनिकों को मृत्यु के मुख में ढकेल दे "१।

प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों के अनुसार भी, एलेक्ज़ेन्डर ने झेलम के युद्ध के अन्तिम समय में पोरस से मित्रता स्थापित करने का प्रयत्न किया। इस विवरण और उक्त एथियोपिक पाठ में, कि एलेक्ज़ेन्डर ने ही सुलह के लिये प्रयत्न किया, सामंजस्य स्थापित

---

(१) The Life and Exploits of Alexander (From Ethiopic Texts), E. A. W. Budge द्वारा सम्पादित और अनुवादित. पृ १२३. । इस ग्रंथ में बाद में यह बताया गया है कि दोनों सेनाओं में युद्ध बंद कर पोरस और एलेक्ज़ेन्डर के बीच एक द्वंद्व युद्ध हुआ, जिसमें पोरस मारा गया। प्राचीन योरोपीय ऐतिहासकों से हमें भली प्रकार मालूम है कि पोरस के मारे जाने की उक्त बात असत्य है।

होता है। हमें एरियन से विदित होता है कि प्रथम एलेक्ज़ेन्डर ने तक्षशिला नरेश को ही संधि का संदेशा देकर भेजा। परंतु पोरस अपने इस पुराने शत्रु और देश द्रोही का अवश्य ही वध कर डालता यदि वह वहां से शीघ्र ही भाग कर अपने प्राण न बचाता। कर्टियस के अनुसार सन्धि का संदेशा लेजानेवाला तक्षशिला नरेश नहीं था, प्रत्युत उसका भाई था, जिसका पोरस ने वध कर ही डाला। पोरस से मित्रता स्थापित करने के इस असफल उद्योग के पश्चात् एलेक्ज़ेन्डर ने एरियन के अनुसार 'पोरस के पास संदेशे पर संदेशे भेजे, और अन्त में "मिरौस" को भेजा, जो एक भारतीय था, क्योंकि एलेक्ज़ेन्डर को मालूम हो गया था कि यह व्यक्ति पोरस का पुराना मित्र था"। ऐरियन के इस महत्वपूर्ण प्रकरण से पोरस के पराजित होने की नहीं परंतु इस तथ्य कि अभिव्यक्ति होती है कि एलेक्ज़ेन्डर उससे संधि करने के लिये बहुत ही व्यग्र था।

इस प्रकार हमें झेलम के युद्ध का निर्णय, जोकि योरोपीय एकपक्षीय पाठों में दिया गया है, ठीक प्रतीत नहीं होता। यह सम्भव हो सकता है कि पोरस ही उस युद्ध का यथार्थ विजेता रहा हो, और जैसा कि ऊपर ज़िक्र हो चुका है एलेक्ज़ेन्डर ही सन्धि का प्रार्थी रहा हो। ऐसा प्रतीत होता है कि कदाचित् युद्ध के पूर्ण रूपेण समाप्त होने से पूर्व ही एलेक्ज़ेन्डर को सन्धि सम्बन्धी चर्चा प्रारम्भ कर देनी पड़ी थी, क्योंकि वह यह जान गया होगा कि यदि युद्ध जारी रहा और

वह उसमें हार गया तो उसका सर्वनाश ही हो जायेगा। प्राचीन क्षात्र परम्परा पर अटल रहने वाले पोरस ने प्रार्थी शत्रु पर आघात नहीं किया। इस प्रकार दोनों में सन्धि हो गयी। इस युद्ध के पश्चात् एलेक्ज़ेन्डर, जैसा कि आगे बताया गया है, पोरस को उसके राज्य के पास के पूर्वीय प्रदेशों पर विजय प्राप्त करने में सहायता देने के लिये सहमत हो गया।

इस युद्ध के पश्चात् पोरस ने एलेक्ज़ेन्डर को अपनी रक्षा में ले लिया, इसका निरूपण इस तथ्य से हो जाता है कि व्यास के तट से लौटते समय जब तक वह पोरस के राज्य में रहा वह सुरक्षित था, पर जैसे ही वह उससे बाहर निकला उसे महा कठिन विरोध का सामना करना पड़ा। मल्लों के साथ युद्ध में स्वय उसको अच्छी मार पड़ी और उसके टुकड़े टुकड़े कर दिये गये होते। अपनी सेना को उत्साहित करने के लिये उसे एक से अधिक बार अपने जीवन को भी संकट में डालना पड़ा। पोरस को पराजित करने में वह असफल रहा, सम्भवत इस समाचार ने पश्चिमोत्तर भारत में उसके विरुद्ध विद्रोह को और भी प्रोत्साहित कर दिया। हमें यह विदित है कि झेलम के युद्ध के पश्चात् ही जबकि एलेक्ज़ेन्डर पजाब की नदियों के अन्तराल में युद्ध कर रहा था, अश्वकों ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया, और उसके निकेनौर नामक सूबेदार का वध कर दिया। आगे जाकर हमने यह मत प्रतिपादित किया है कि यह विद्रोह कभी नहीं दबाया जा सका, और एलेक्ज़ेन्डर के व्यास

के तट से सिन्ध और मकरान के मरुस्थल से हो कर सहसा भागने का, जहा उसकी अधिकांश सेना नष्ट हो गयी, कारण भी यही विद्रोह था।

ऐसा प्रतीत होता है कि एलेक्ज़ेन्डर के भारतीय आक्रमण की बनाई हुई कहानियों में एलेक्ज़ेन्डर की झेलम के युद्ध सम्बन्धी पराजय पर आवरण डालने का प्रयत्न किया गया है। इस ही के कारण यह कल्पना भी की गयी है कि एलेक्ज़ेन्डर पोरस की वीरता से प्रभावान्वित हुआ, और उसे उसने अपना मित्र बना कर उसका राज्य वापिस दे दिया। एलेक्ज़ेन्डर अपने प्रतिद्वन्दियों के प्रति बहुत कठोर था। इसके लिये कोई भी बैक्ट्रीया के परशियन सूबेदार बेसस के साथ उसके पाश्विक व्यवहार की स्मृति करा सकता है। बेसस अपने देश की स्वतंत्रता के लिये अन्त तक बड़ी वीरता से लडा। एरियन ने लिखा है कि जिस समय वह पकड कर एलेक्ज़ेन्डर के सामने लाया गया, उसने उसके कोड़े लगाने की आज्ञा दी, और तत-पश्चात् उसके नाक कान कटवा कर मरवा दिया। अन्य परशिया के सूबेदारों के साथ भी, जिन्हों ने अपने देश के लिये युद्ध किया, ऐसा ही व्यवहार किया गया। इसी प्रकार कैलस्थनीज़ के साथ भी उसके व्यवहार की स्मृति कराई जा सकती है। केलसस्थनीज़ उसके गुरु एरिसटाटिल का भतीजा था। इसने एलेक्ज़ेन्डर द्वारा महान् परशियन सम्राटों के व्यवहारों के मूर्खतापूर्ण अनुकरण के प्रतिकूल प्रतिवाद किया था। इस पर कैलस्थनीज़ को बेड़ियों से जकड़ कर लाया गया और बाद में उसे शिकजे में कस कर मर-

वाया गया। एलेक्ज़ेंडर को अपने ही हाथ से क्लीटस के निर्दयता पूर्ण वध के पाप से मुक्त नहीं किया जा सकता। इस बेचारे क्लीटस का इतना ही दोष था कि इसने एक दिन एलेक्ज़ेन्डर के पिता फ़िलिप्स की कीर्तियों का बखान कर दिया था। क्लीटस एलेक्ज़ेन्डर की धाय का, जिसे वह माता के समान पूज्य मानता था, सहोदर भाई था, और इसने एक युद्ध में एलेक्ज़ेन्डर की जान भी बचाई थी। अपने पिता के विश्वासपात्र सेना नायक पारमिनियन का वध एलेक्ज़ेन्डर के चरित्र पर एक बड़ा कलंक है। रात्रि के आवरण में भारतीय सैनिकों का, जिन्हें मसागा से लौटने की आज्ञा मिल चुकी थी, एलेक्ज़ेन्डर द्वारा किया गया क्रूरता पूर्ण रक्तपात भी उसकी कठोरता का एक उदाहरण है। उसकी समस्त तोफानी युद्ध यात्रा स्थान स्थान पर सम्पन्न नगरों को नष्ट करने, और स्त्रियों, बच्चों, तथा जो कोई भी उसके सामने आया, उन के रक्तपात से पूर्ण थी। उदाहरणार्थ उसने सिन्ध की अपनी समस्त युद्धयात्रा में ऐसा ही किया। एलेक्ज़ेन्डर का स्थान संसार के बड़े बड़े आततायीयों और अत्याचारियों में होगा। उसका अल्प जीवन पाशिक रक्तपातों, अनुचित हत्याओं, और नीचतापूर्ण प्रतिशोधों से पूर्ण था। उसकी किसी भी उदारतापूर्ण कीर्ति से उसका जीवन उज्वल नहीं हुआ जब तक कि हम पोरस के प्रति उसकी कल्पित सुहृदयता में विश्वास न करें।

हमें यह भी बताया जाता है कि पोरस के प्रति एलेक्-ज़ेन्डर की सुहृदयता पोरस की स्वतंत्रता और उसके राज्य को

लौटाने तक ही सीमित न थी, प्रत्युत एलेक्ज़ेन्डर ने पोरस के राज्य में उपहार रूप उसके पूर्व की ओर का एक बड़ा प्रदेश भी सम्मिलित कर दिया। यह फिर एक झूठी कल्पना ही प्रतीत होती है। इस नवीन प्रदेश का उपहार झेलम के युद्ध क्षेत्र में दिया गया, इस में विश्वास करना मूर्खता प्रतीत होती है, क्योंकि उस समय तक उस पर विजय ही नहीं प्राप्त की गयी थी। झेलम के युद्ध के पश्चात् इस उपहार का प्रश्न उठ ही नहीं सकता, क्योंकि हमें यह ज्ञात है कि एलेक्ज़ेन्डर और पोरस के सम्मिलित रूप से घोर संग्राम करने के पश्चात् यह प्रदेश जीता गया था। वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि झेलम के युद्ध के बाद पोरस ने एलेक्ज़ेन्डर को अपनी विजयों का साधन बनाया, जैसे कि आम्भी ने पोरस को पराजित करने के लिये उसे अपना साधन बनाना चाहा था। पोरस अपने उद्योग में सफल रहा, और आम्भी के हाथ असफलता पड़ी।

पोरस एक शक्ति शाली और आकांक्षी सम्राट् था। उसने एलेक्ज़ेन्डर के भारत क्षितिज पर उपस्थित होने से पूर्व ही अभिसार नरेश के साथ अपने राज्य के पूर्व में निवास करने वाली स्वतंत्र जातियों पर आक्रमण किया, पर जैसा कि एरियन से हमें ज्ञात होता है उन्हें वहां पूर्ण सफलता न मिली। यह सम्भव हो सकता है कि एलेक्ज़ेन्डर के भारत में उपस्थित होने के कारण पोरस को उन जातियों को पूर्ण रूपेण विजित किये बिना अपने राज्य में लौट आना पड़ा। झेलम के युद्ध के पश्चात् पोरस ने अपने उस उद्योग को पूरा किया जिसे वह

झेलम के युद्ध के पूर्व अधूरा छोड आया था। इस युद्ध के कुछ दिनो बाद उसका राज्य व्यास के तट तक फैल गया। हमने आगे चलकर यह मत प्रकट किया है कि प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों का पोरस और मुद्राराक्षस नाटक का पर्वतक एक ही व्यक्ति थे। इस आलोक से कि पोरस और पर्वतक एक ही व्यक्ति थे, यदि हम उस समय की घटनाओ पर दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट व्यक्त हो जाता है कि पोरस की महान् आकाक्षा पूर्व में नन्द के राज्य तक को विजय करने की थी। इसको भी बाद में उसने चन्द्रगुप्त के साथ सफलता पूर्वक पूर्ण किया। पर यदि हम मुद्राराक्षस में सुरक्षित कथा की ऐतिहासिकता में विश्वास करें तो यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इस विजय के समय ही उसे ससार से विदा लेनी पड़ी।

अध्याय ४

भारत में एलेक्ज़ेन्डर का पराभव।

झेलम के युद्ध के पश्चात् तक्षशिला नरेश आम्भी की अधिक चर्चा सुनने में नहीं आती। सम्भवतः अब वह एलेक्ज़ेन्डर से विमुख हो गया, क्योंकि उसने उसके शत्रु पोरस से मित्रता करली और पोरस तो अब और भी शक्तिशाली बन गया। अब रही अभिसार नरेश की बात, एलेक्ज़ेन्डर ने उसे अपने समक्ष उपस्थित होने के लिये कहला भेजा था। उसकी इस आज्ञा के उल्लंघन करने पर उसके राज्य पर आक्रमण करने की भी एलेक्ज़ेन्डर ने उसको धमकी दी थी। परन्तु अभिसार नरेश ने इस आज्ञा का पालन नहीं किया, उसकी इस निर्भीकता के कारण पर हम आगे दृष्टिपात करेंगे।

झेलम के युद्ध के पश्चात् एलेक्ज़ेन्डर पोरस के साथ पूर्व की ओर आगे बढ़ा। झेलम और रावी के बीच में उसको कोई युद्ध करना नहीं पड़ा। चिनाब और रावी दोनों ही नदियां उसने बिना किसी विरोध के पार करलीं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पोरस का प्रभाव और सम्भवतः उसके राज्य का विस्तार रावी तक पहुंच चुका था। परन्तु रावी पार करने पर उसके और व्यास

के बीच में फिर उसे क्षत्रिय जातियों से भीषण युद्ध करना पड़ा। जैसा कि हम पहले ही लिख चुके हैं, यहां पोरस ने एलेक्ज़ेन्डर के साथ मिल कर युद्ध किया, और रावी तथा व्यास के मध्यवर्ती प्रदेश को पोरस ने अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। व्यास के तट पर पहुंच कर सहसा एलेक्ज़ेन्डर की सेना ने अपने शस्त्र छोड़ दिये और आगे बढ़ने से इंकार कर दिया। एलेक्ज़ेन्डर ने उन्हें आगे बढ़ाने के लिये साम दाम नीति से काम लिया, उनसे विनय भी की, परन्तु सब व्यर्थ हुए, और अन्त में उसे विवश हो वापिस लौटने की आज्ञा देनी पड़ी।

यहां हम एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाते हैं। इसका क्या कारण था कि एलेक्ज़ेन्डर लौटते समय अपने थकित और स्वदेश लौटने के लिये व्यग्र सैनिकों को सिन्ध और मकरान के मार्ग से ले गया ? उसने पश्चिमोत्तर वाले मार्ग को, जिससे वह आया था और जो उसके द्वारा विजित प्रदेश से हो कर जाता था, क्यों नहीं गृहण किया ? वह जानता था कि पोरस के राज्य (जिसका विस्तार रावी और चिनाव के संगम तक था) की सीमा को छोड़ते ही उसे फिर भीषण युद्ध करना पड़ेगा। योरोपीय इतिहासकार हमें यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि नवीन विजय की आकांक्षा से प्रेरित हो एलेक्ज़ेन्डर ने यह दुर्गम और संकटापन्न मार्ग गृहण किया। जो सेना व्यास के तट पर विद्रोह कर लौटने में सफल हुई, क्या वह अपने द्वारा विजित देश से हो कर जाने के लिये एलेक्ज़ेन्डर पर दबाव नहीं डाल सकती थी ? वास्तविक बात यह

थी कि पश्चिमोत्तर से हो कर जाने वाला परशिया का मार्ग एलेक्ज़ेन्डर तथा उसकी सेना के लिये बिल्कुल बन्द हो गया था। इस प्रकार वे सिंध और मकरान के मार्ग से जाने के लिये विवश हुए। इस बात को पूर्ण रूपेण समझने के लिये हमें हिन्दुकुश और सिंध नद के मध्यवर्ती प्रदेश पर, जहाँ एलेक्ज़ेन्डर के भीषण अत्याचारों ने धधकते हुए घावों को छोड़ा था, दृष्टि पात करना चाहिये।

जिस समय एलेक्ज़ेन्डर अपने दल सहित रावी के निकट पड़ाव डाले पड़ा था अश्वकों ने सिन्ध नद के पश्चिम में उसके विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। उन्होंने उसके क्षत्रप नकेनोर का वध कर डाला। यह कहा गया है कि परशियन ट्रायसपीज़ और तक्षशिला से आये हुए कुछ युनानी सैनिकों ने इस विद्रोह का दमन किया। परन्तु यह सत्य नहीं जान पड़ता। पहली बात तो यह है कि सम्भवत: ट्रायसपीज़ विद्रोहियों के साथ था। हमें पता चलता है कि उसके पश्चात् तुरन्त ही एलेक्ज़ेन्डर ने वहां के लिये एक अन्य ही परशियन क्षत्रप की नियुक्ति की, जो सम्भवतः अपने पद पर प्रतिष्ठित हो ही न सका। दूसरे इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता कि जिन अश्वकों को एलेक्ज़ेन्डर स्वयं अपनी अधिकांश सेना सहित नौ महीने के युद्ध के पश्चात् भी नहीं हरा सका उनका दमन इतनी सरलता से हो सकता था।

सम्भवत: शशिगुप्त, जैसा कि यह बहुत बड़ा अवसरोपयोगी था, विद्रोहियों का नेता बन बैठा। इस विद्रोह का आयोजन बहुत बड़ा रहा होगा, क्यों कि अश्वकों को संगठित होने के लिये पर्याप्त समय मिल गया था। स्पष्ट रूप से अभिसार नरेश भी

विद्रोह में सम्मिलित हो गया था। यही कारण था कि उसने एलेक्ज़ेन्डर के समक्ष उपस्थित होने को उसकी आज्ञा की तनक परवाह नहीं की। जैसा कि हम ऊपर लिख आये है, सम्भवतः तक्षशिला नरेश भी विद्रोहियों में सम्मिलित हो गया था। इस प्रकार एलेक्ज़ेन्डर के पीठ पीछे अश्वकों को उसके सैन्य बल के बराबर ही सैन्य शक्ति संगठित करने का यह प्रथम ही अवसर मिला। पोरस के विरुद्ध झेलम के तट पर युद्ध कर एलेक्ज़ेन्डर की सेना नितान्त जर्जरित हो गयी थी। विचारिये इस दशा में वह किस प्रकार झेलम के युद्ध के समान एक और युद्ध का संकट मोल लेती। इतना ही नहीं, इस युद्ध में तो यवनों को एक बहुत विशाल सेना से लोहा लेना पड़ता, जिसमें असफल होने पर उनका पूर्ण विनाश अवश्य ही होता। इन्हीं सब कारणों से एलेक्ज़ेन्डर की सेना ब्यास के तट पर भय से विचलित हो उठी और उन्हों ने अति शीघ्रता से सिन्ध और मकरान के मार्ग से लौट जाने का प्रयत्न किया।

लौटते समय युनानी सेना की सैन्य रीति नीति का नितान्त लोप हो गया था। मार्ग में मल्लियों से युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व युनानी सेना एक बार फिर विद्रोह करने पर उतारू हो गयी थी। उन्हें सगठित रखने के लिये एलेक्ज़ेन्डर को कई बार अपने जीवन तक को संकट में डालना पड़ा। मल्लियों के विरुद्ध एक युद्ध में एलेक्ज़ेन्डर का शरीर घावों से छिद गया था। यह आश्चर्य की बात है कि एलेक्ज़ेन्डर उन घावों और चोटों से कैसे जीवित रह सका। प्लुटार्क ने इस घटना का निम्न

लिखित विवरण दिया है:— " मल्ली(मालव) भारत की सब से अधिक युद्ध कुशल जाति कही जाती थी। उनसे युद्ध करते हुए एलेक्‌ज़ेन्डर ऐसी स्थिति में पहुंच गया था कि उनके द्वारा उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले जाते। उसने अपने अस्त्रों से मल्लियों को दीवार के नीचे से खदेड़ भगाया, और वह पहला ही व्यक्ति था जो दीवार पर चढ़ा। ज्यों ही वह ऊपर पहुँचा कि उन्हों की सीढ़ी टूट गयी, और वह वहीं खड़ा रह गया, नीचे से मल्लीयों ने उस पर तथा उसके साथियों पर जो वहां उपस्थित थे तीरों की वर्षा कर दी। यह देख कर एलेक्‌ज़ेन्डर नीचे शत्रुओं के बीच में कूद पड़ा। उन लोगों ने आगे बढ़ कर उस पर आक्रमण किया, और उसके कवच को छेद कर तलवार तथा बर्छियों से उसे घायल कर दिया। एक मल्ली ने जो कुछ दूर पर खड़ा था, इतने ज़ोर से खेंच कर तीर चलाया कि वह वक्षत्रण को छेदता हुआ एलेक्‌ज़ेन्डर के सीने की पसली में जा घुसा। यह बाण इतने बल पूर्वक चलाया गया था कि उसके ज़ोर से एलेक्‌ज़ेन्डर पीछे को पिछड़ गया और घुटनों के बल आ गिरा। उस समय मल्ली लोग उसका सिर काटने के लिये तलवार लेकर दौड़े, परन्तु एलेक्‌ज़ेन्डर के दो साथी उस के सामने आ खड़े हुए, और उन्हों ने उसकी रक्षा की। उनमें से एक बुरी तरह घायल हुआ और दूसरा मारा गया। एलेक्‌ज़ेन्डर की गर्दन पर एक मोटे डन्डे का बहुत ही तुला हुआ हाथ लगा, जो अन्तिम प्रहार था। ततपश्चात् उसके सैनिक दीवार तोड़कर

वहा वुम आये और उसे मूर्छित दशा में अपने शिवर पर ले गये । इस घटना के कारण क्रोधाग्नित यवन सनिक नगर निवासियों पर टूट पडे, ओर स्त्रियों तथा बच्चों सहित सबका बध कर डाला । ''

यूनानी सेना ने समस्त सिंध में जैसा पाशविक अत्याचार किया वैसा मानव इतिहास में मिलना कठिन हे । प्रत्येक स्थान पर एलेक्ज़ेन्डर के प्रति कटु भावनाए जागृत हो गयीं थीं । उसको अपनी जान बचा कर भारत से लौट जाने के लिये रक्त-पात आवश्यक हो गया था। सम्भवतः एलेक्ज़ेन्डर का विचार भारत से समुद्री रास्ते से निकल भागने का था, परन्तु उस मार्ग से जाना असम्भव था । वह अगस्त मास में हिन्द महासागर में पहुचा, और इन दिनों वहा प्रतिकूल हवाए चलने लगती हैं । यह देख कर एलेक्ज़ेन्डर ने अपने एक सेना नायक नियारकस की अध्यक्षता में बेडा छोड दिया, और स्वय अधिकाश सेना सहित मकरान की मरुभूमि से भाग निकला ।

बिलोचिस्तान की सब जातियां भी एलेक्ज़ेन्डर के विरुद्ध खडी हो गयीं। बडी कठिनता से उसने कुछ को वश में किया, और वहा से कुछ रसद प्राप्त की। परन्तु जैसे हो वह आगे रेगिस्तान की ओर बढा कि उन्हो ने वहा नियुक्त किये गये उसके क्षत्रप एपेलोफनिस का बध कर डाला। इस प्रकार वहां से रसद पाने की सम्भावना भी जाती रही। प्राचीन योरोपीय इतिहासकार स्ट्रेबो ने मकरान मरुभूमि में एलेक्ज़ेन्डर की इस यात्रा का निम्न विवरण दिया है ।

" एलेक्जेन्डर को लौटते समय अपनी समस्त यात्रा में बड़ी बड़ी आपत्तियां सहन करनी पड़ीं। उसका मार्ग संकट-पूर्ण और वीरान प्रदेश से होकर था। रसद के लिये भी उसे बहुत परेशान होना पड़ा। वह दूर दूर से आनी पड़ती थी। वह भी कभी कभी मिलती और इतने कम परिमाण में कि सेना को बहुत ही ज़्यादा क्षुधा से पीड़ित होना पड़ा। बोझ लादने वाले जानवर भी दम तोड़ देने लगे। उनकी संख्या में कमी होने के कारण उनपर लादी हुई वस्तुएँ जहां-तहां मार्ग और पड़ावों में छोड़ दी जाती थीं। सेना को अपनी क्षुधा पीड़ा शान्त करने के लिये खजूरों और खजूर के वृक्षों के गूदे का ही सहारा था।

" रसद की न्यूनता के परिणाम स्वरूप पीड़ा के अति-रिक्त, सूर्य का प्रचण्ड आतप, बालू की गहराई और उसका ताप भी असह्य था। कहीं कहीं तो बालू की ऊंची सपाट मुंडेरें सी थीं, जिनको पार करना कठिन हो जाता था। जलाशयों के दूर होने के कारण सेनाको लम्बी लम्बी यात्राएं करनी पड़ती थीं। यह यात्राएं बहुधा रात्रि में ही की जाती थीं। शिविर जलाशयों से दूर रखे जाते थे, जिससे सैनिक, बहुत प्यासे होने के कारण बहुत अधिक पानी न पी जायें। इतने पर भी बहुत से सैनिक शरीरत्राण पहने ही पहने पानी में कूद पड़ते थे। वहां वे खूब पानी पीते और अन्त में पानी के नीचे बैठ कर मर जाते। जब उनका शरीर सड़ उठता तो कुण्ड का उथला पानी खराब हो जाता। इस प्रकार अन्य सैनिक जो पानी

पीने से वंचित रह जाते और प्यास से पीड़ित हो सड़कों पर लेट कर अपने को प्रचण्ड मार्तण्ड के अर्पण कर देते थे। उनके हाथ पैर अकड़ जाते और वह भयानक अन्त गति को प्राप्त होते। कुछ थकान और नींद के कारण सड़क के एक ओर सोने चल देते थे, और इस प्रकार पीछे रह, घर वह मार्ग में भटक जाते, और भूख तथा प्रचण्ड गर्मी के कारण समाप्त हो जाते। इतने पर भी उनकी विपत्ति का अन्त न हुआ। इसके पश्चात् ही शीत कालीन जल प्रवाह एक रात्रि को उनके ऊपर वह आया। उसमें बहुत सी जाने गई और बहुत सा सामान भी नष्ट हो गया। उसमें एलेक्ज़ेन्डर का बहुत सा इधर उधर से लूटा हुआ शाही सामान भी बह गया।"

एलेक्ज़ेन्डर की अधिकांश सेना इस मरुभूमि में काल कवलित हुई। नियारकस की अध्यक्षता में जो नावों का बेड़ा छोड़ा गया था उसकी भी यही दुर्दशा हुई। देशनिवासियों के विरोध के कारण प्रतिकूल हवा होने पर भी उन्हें रवाना होना पड़ा। हगोल तथा अन्य स्थानों पर उन्हों ने रसद और पानी लेने के लिये लंगर डालना चाहा परन्तु बहुत से व्यक्तियों की जान झोंक कर भी वे तट पर न उतर सके। योरोपीय ऐतिहासिकों ने इस जल यात्रा को खूब बढ़ा-चढ़ा कर लिखा है। कैसी अविश्वासनीय बात है कि जो नावें पंजाब की नदियों में ही डूबने लगी थीं वे हिन्द महासागर में विपरीत वायु के होने पर भी पार हो गयीं। परन्तु एलेक्ज़ेन्डर और नियारकस के मिलने का निम्न लिखित विवरण अपनी कहानी स्वयं ही बता देगा। यह बात उस समय

की है जबकि यह अनुमान किया जाता है कि नियारकस ने हिन्द महासागर से सकुशल निकल मिनाब के तट पर अपना लंगड़ डाल लिया था। जैसा कि एरियन ने लिखा है, "धूप के कारण वह काला पड़ गया था, और उसके वस्त्रों ने चिथड़ों का रूप धारण कर लिया था। उसे कोई नहीं पहचान सका। यहां तक कि उसकी खोज में भेजे गये दूत को स्वयं उसने बताया कि नियारकस मैं हूं। वह ऐसी फटी दशा में एलेक्ज़ेन्डर के सम्मुख उपस्थित हुआ कि वह भी अपने सेनानायक को नहीं पहचान सका।

एलेक्ज़ेन्डर का भारत को विजय करने का प्रयास उसकी बहुत ही बड़ी गलती थी। उसने उसकी अन्य विजयों पर भी पानी फेर दिया। वह भारत से लौटने के पश्चात् शीघ्र ही निराश, शिथिलता और असंयम से जर्जरित हो इस संसार से विदा हो गया। प्लूटार्क ने निम्न लिखित शब्दों में भारतीय यात्रा पर अपने भाग्य को कोसते हुए एलेक्ज़ेन्डर से उपयुक्त ही कहलवाया है।

"भारत वर्ष में मैं सर्वत्र भारतवासियों के आक्रमण और क्रोध का भाजन बना। उन्हों ने मेरे कन्धे को घायल किया। गान्धारियों ने मेरे पैर को निशाना बनाया। मल्लियों से युद्ध करते हुए एक तीर की नौक से मेरा वक्षस्थल छिद गया, और गर्दन पर भी एक गदा का तगड़ा हाथ पड़ा।"

प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों के ही कथनों से हमने ऊपर यह सिद्ध किया है कि एलेक्ज़ेन्डर की सेना भारत से खदेड़ कर बाहर निकाल दी गयी। भागते समय उसकी सेना अधिकतर नष्ट होगई और बड़ी कठिनता से वह स्वयं भी अपनी जान

बचा सका। ऐसी दशा में उसको भारत और संसार के विजेता आदि की पदवी देना ऐतिहासिक सत्य का बिलकुल खून करना है।

एलेक्ज़ेन्डर के भारतीय आक्रमण को ठीक ठीक समझने के लिये निम्न प्रश्न का उत्तर बड़ा आवश्यक है। प्रथम तो पश्चिमोत्तर भारत में पुन. सारे दक्षिण पंजाब और सिन्ध में जो सब लोग दृढ़ता पूर्वक एलेक्ज़ेन्डर के विरुद्ध खड़े हो गये थे, तो क्या उनका यह विरोध पूर्णरूपेण संगठित था? यह ठीक ही कहा जाता है कि पन्जाब के ब्राह्मणों में ही एलेक्ज़ेन्डर के खिलाफ विरोध खड़ा हुआ जिस ने भारत से यवन राज्य का शीघ्र ही नामोनिशान तक मिटा दिया। सिन्ध में भी ब्राह्मण ही उसके सब से कट्टर विरोधी थे। उसने भी जब उसको अवसर मिला तो उनके नष्ट करने में कमी न उठा रखी। तब एलेक्ज़ेन्डर के विरुद्ध इस स्वतंत्रता के युद्ध के नेता कौन थे? आगे जाकर हम यह सिद्ध करेंगे कि उसके नेता चाणक्य और चन्द्रगुप्त थे, जो दोनों पश्चिमोत्तर भारत के ही निवासी थे।

अध्याय ५

पर्वतक और पोरस एक ही व्यक्ति थे।

मुद्राराक्षस नाटक के अनुसार मगध के अधिपति नन्द के मूलोच्छेदन में चन्द्रगुप्त का मुख्य सहायक पर्वतक था। ऐसा प्रतीत होता है कि नाटक में सुरक्षित यह एक समीचीन ऐतिहासिक तथ्य है। जैन परम्परा के अनुसार भी, जैसा कि परिशिष्टपर्व में हेमचंद्र ने उल्लेख किया है, चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को साथ लेकर मगध पर विजय प्राप्त करने के अभिप्राय से पर्वतक के साथ संधि की। जैन कथा के अनुसार पर्वतक हिमालय प्रदेश का अधिपति था। मुद्राराक्षस और जैन कथा इन दोनों से विदित होता है कि संधि की शर्तों में पर्वतक को यह विश्वास दिलाया गया था कि विजित देश में उसको भी उपयुक्त हिस्सा दिया जायेगा। बौद्ध ग्रन्थ महावंश टीका के अनुसार भी पर्वतक ने मगध के अधिपति नन्द के विरुद्ध चन्द्रगुप्त और चाणक्य की सहायता की, और बाद में चन्द्रगुप्त द्वारा उसका वध हुआ। इन भिन्न कथाओं के विस्तार में कुछ भेद मिलते हैं, परन्तु उन सबसे यह अवश्य स्पष्ट होता है कि मगध के नन्दों के उन्मूलन में पर्वतक ने चन्द्रगुप्त को सहायता दी। निम्न लिखित कारणों से

हमें यह विश्वास होता है कि ग्रीक इतिहासकारों का पोरस मुद्राराक्षस नाटक का पर्वतक ही है।

(१) पोरस और पर्वतक के आधिनस्थ राज्य एक ही थे।

मुद्राराक्षस नाटक से हमें यह ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त के विरुद्ध पर्वतक के पुत्र मलयकेतु के मगध पर हमला करने में यह पाच राजा उसके साथ थे–

(१) कुलूत का चित्रवर्मा (२) मलय का सिंहनाद (३) काश्मीर का पुष्करक्ष (४) सिन्ध का सिन्धुसेन और (५) परशिया का मेघनाद। चाणक्य ने अपनी गूढ़ चालों से मलयकेतु को यह विश्वास दिलाया कि उक्त पांचों राजा अमात्य राक्षस सहित उसका त्याग कर चन्द्रगुप्त से मिलने का यत्न कर रहे थे। उनमें से पहिले तीन तो मलयकेतु का राज्य हड़प लेना चाहते थे, और बाकी दो उसकी हस्ती सेना तथा खज़ाने पर अधिकार जमाना चाहते थे[1]। नाटक के इस

---

(१) *निम्न लिखित राक्षस का सन्देशा चन्द्रगुप्त के पास भेजा* हुआ बनाकर मलयकेतु को सुनाया गया।

"पञ्च राजानस्त्वया सह सुप्रतिसन्धिता। ते यथा कुलूताधिपश्चित्रवर्मा मलयनगराधिप सिंहनाद काश्मीरदेशनाथ पुष्कराक्ष सिन्धुराज सिन्धुसेन पारसीको मेघनाद इति। एतेषु प्रथमगृहीतास्त्रयो राजानो मलयकेतोर्विषयमिच्छन्त्यपरौ हस्तिबलं कोष च।

मुद्राराक्षस अंक ५.

तथ्य से कि कुलूत, काश्मीर और मलय के नरेश मलयकेतु के राज्य में हिस्सा बांटने के आकांक्षी थे यह स्पष्ट होता है कि वे मलयकेतु के पड़ोसी रहे होंगे। और दूरस्थ प्रदेश सिन्ध और परशिया के नरेश उसके हाथियों और खज़ाने को लेना चाहते थे। यदि हमें पहिले तीन नरेशों के राज्य का ठीक ठीक ज्ञात हो जाय तो हम मलयकेतु व उसके पिता पर्वतक के राज्य के लिये भी एक धारणा निर्धारित कर सकते हैं।

काश्मीर की स्थिति को जानना बिल्कुल भी कठिन नहीं है। वह करीब करीब आजकल का ही काश्मीर है। कुलूत के लिये भी बहुत कुछ निश्चयात्मकरूप से कहा जा सकता है कि वह व्यास की उत्तरीय उपत्यका में अवस्थित आजकल का कुलू ही है। चीनी यात्री ह्वानच्वांग ने कुलूत राज्य को जालन्धर के पूर्व–उत्तर में ११७ मील पर स्थित माना है। व्यास नदी की उत्तरीय उपत्यका में ठीक यह स्थिति आधुनिक कुलू जिले की है। विष्णु पुराण में कुलूत नामक एक जाति का प्रसंग आया है और सम्भवतः यही जाति रामायण तथा बृहतसंहिता में कौलूत नाम से विदित है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि आधुनिक कुलू प्राचीन कुलूत नाम का संक्षिप्त रूप है। ह्वानच्वांग ने इस प्रदेश के बारे मे यह भी बताया है कि वह पर्वत मालाओं से घिरा हुआ है। इस प्रकार मुद्राराक्षस नाटक के रचयिता का कुलूत आजकल का कुलू प्रदेश ही था। यह प्रदेश काश्मीर की पूर्व की ओर की सीमा पर स्थित है।

तैलग ने विलसन का अनुकरण करते हुए नाटक के मलय को पश्चिम घाट के दक्षिण सीमान्त पर माना है। हमारे विचार में उनका यह कथन नितान्त अनुपयुक्त है। उनके अनुसार केवल यही एक ऐसा दक्षिण का राज्य है जिसका नाटक में प्रयाग आया है। हमारी समझ में यह नहीं आता कि मलयकेतु के एक सहायक को इतने दूर दक्षिण में रखना कैसे उपयुक्त होगा जबकि उसके और साथी पश्चिमोत्तर भारत या उसके आस पास के प्रदेश के निवासी थे। इसके अतिरिक्त यदि मलय को हम दक्षिण में मान भी लें तो हमारी समझ में यह कदापि नहीं आसकेगा कि दक्षिण में इतने दूर मलय देश का राजा मलयकेतु के राज्य को जो उत्तर में था बटवाकर एक भाग क्यों लेना चाहता। दूर के राजाओं के समान वह भी उसका खज़ाना लूटकर माल ही ले जाना चाहता।

मुद्राराक्षस नाटक की भिन्न हस्त लिखित प्रतियें जो प्राप्त हुई हैं, और जिनकी तेलग और हिलेब्रेट आदि विद्वानों ने तुलना की है, उन में कितने ही स्थानों पर मलयजनाधिपो पाया जाता है। इससे विदित होता है कि मलय किसी स्थान का नाम नहीं है। नाटक में ही जैसे शक नरपति और यवनपति उपाधियों से शक और यवन जाति के शासकों का बोध होता है, इस ही प्रकार मलयनरपति से भी मलय जाति के राजा का बोध होता है। और इस ही प्रकार "मलयनगराधिप" में भी मलयनगर से मलयजाति के नगर का बोध होता है। सम्भवतः मुद्राराक्षस नाटक का मलय ग्रीक इतिहासकारों की मल्लोई

का सूचक है। एलेक्ज़ेन्डर के आक्रमण के समय इसके राज्य का विस्तार रावी नदी के दोनों ओर था।

अब यदि हम यह स्वीकार करें कि मलयकेतु के राज्य के उत्तर में काश्मीर और कुलूत थे और दक्षिण सीमा पर मलय (मल्लोई) जाति थी तो इस विवरण से पोरस के राज्य का भी बोध होता है। ग्रीक ऐतिहासिकों के अनुसार पोरस का राज्य वास्तव में झेलम और चिनाव के मध्य में स्थित था। एलेक्ज़ेन्डर के आक्रमण के पश्चात् उसका विस्तार पूर्व में व्यास नदी तक फैल गया था। पोरस के राज्य के उत्तर में भी काश्मीर और कुलूत थे और दक्षिण में मल्लोई थे।

कतिपय प्राचीन संस्कृत पुस्तकों में भी ठीक उक्त उसी प्रदेश पर जहां कि युनानी इतिहासकारों के पोरस और मुद्राराक्षस नाटक के पर्वतक दोनों का राज्य था, पौरवों के राज्य का उल्लेख किया गया है। बृहत्संहिता में उत्तरीय भारत में तक्षशिला आदि के लोगों के साथ पौरवों का भी ज़िक्र किया है।[२] महाभारत में भी कुलूत, काश्मीर, अभिसार जालंधर (त्रिगर्त) और पंजाबके प्रजातंत्रों के साथ उत्तर में पौरवों का उल्लेख किया है[३]।

(२) तक्षशिलपुष्कलावतकैलावतकण्ठधानाश्च ॥२६॥
अम्बरमद्रकमालवपौरवकच्छारदण्डपिङ्गलका ॥२७॥
बृहत्संहिता अ. १४

(३) मोदापुर वामदेवं सुदामानं सुसंकुलम्।
उलूकानुत्तरांश्चैव तांश्च राज्ञः समानयत् ॥११॥
तत्रस्थः पुरुषैरेव धर्मराजस्य शासनात्।
किरीटी जितवान्राजन्देशान्पञ्चगणांस्तत ॥१२॥
स देवप्रस्थमासाद्य सेनबिन्दोः पुरं प्रति।

इस से विदित होता है कि पोरस व्यक्तिगत नाम नहीं है प्रत्युत पौरव का ग्रीक रूपान्तर है और यह पुरु जाति के सरदार की उपाधिमात्र है। पोरस व्यक्तिगत नाम नहीं था वरन् एक उपाधि थी, यह इससे भी स्पष्ट हो जाता है कि झेलम के युद्ध के ख्यातनामा पोरस का एक भतीजा भी था और उसे भी ग्रीक इतिहासकारों ने पोरस से ही अभिहित किया है।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि पुरानों से मालूम होता है कि नन्दनवन पौरवों का एक पुराना और आदि स्थान

बलेन चतुरङ्गेण निवेशमकरोत्प्रभु ॥१३॥
स तं परिवृत्त सर्वैर्विष्वगश्च नराधिपम्।
अभ्यगच्छनमहातेजा पौरव पुरुषर्षभ ॥१४॥
विजित्य चाहवे शूरान्यपार्वतीयान्महारथान्।
जिगाय सेनया राजन्पुर पौरवरक्षितम् ॥१५॥
पौरव युधि निर्जित्य दस्युपर्वतवासिन ।
गणानुत्सवसंकेतान जयत्सप्त पाण्डव ॥१६॥
तत काश्मीरकान्वीरान्क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभ ।
व्यजयल्लोहित चैव मण्डलैर्दशभि सह ॥१७॥
ततस्त्रिगर्ता कौन्तेय दार्वा कोकनदास्तथा।
क्षत्रिया बहवो राजान्मुपावर्तन्त सर्वश ॥१८॥
अभिसारीं ततो रम्यां विजिग्ये कुरुनन्दन ।
उरगावासिन चैव रोचमान रणेऽजयत ॥१९॥

सभापर्व अध्याय. २७

था । उनके पुरखा पुरुरवस और उर्वशी वहा रहे थे[४] । सर आरेल स्टीन ने बताया है कि नन्दन आज भी झेलम के किनारे के नमक के पहाड़ (Salt Range) के एक भाग का नाम है[५] । स्टीन के अनुसार इस ही स्थान के आसपास वहीं पर एलेक्जेन्डर की पोरस की कुछ आगे भेजी हुई सेना से मुठ-भेड़ हुई, और इस ही स्थान के आसपास उसने पोरस से युद्ध के पहिले झेलम नदी को पार किया था । इस स्थान का नन्दन नाम होने से विदित होता है कि प्राचीन काल में पौरवों का इस स्थान से सम्बन्ध था । इससे इस बात की पुष्टि होती है कि ग्रीक शब्द पोरस पौरव का रूपान्तर है और एलेक्जेन्डर के समय पौरव लोग ही पंजाब के इस स्थान के स्वामी थे ।

---

(४) वने चैत्ररथे रम्ये तथा मन्दाकिनी तटे ।
अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे ॥
गन्धमादनपादेषु मेरुशृङ्गे नगोत्तमे ।
उत्तरांश्च कुरून्प्राप्य कलापग्राम मेवच ॥
एतेषु वनमुखेषु सुरैराचरितेषु च ।
उर्वश्या सहितो राजा रेमे परमया मुदा ।

वायुपुराण. अ ९०

(५) स्टीन के निम्न कथन की तुलना करो,

" नन्दन आज तक भी एक विचित्र पहाड़ी दुर्ग और इलाके का नाम है, जो नमक के पहाड़ के पूर्व भाग के एक कठिन रास्ते के बिलकुल ऊपर है । यह रास्ता बागानवाला ग्राम होता हुआ उसके सन्मुख झेलम के मैदान को जाता है "

Sir A. Stein's Archaological Survey in North-Western India पृ. २५.

(२) पर्वतक पोरस (या पौरव) की एक अन्य ही उपाधि थी।

पूर्व पृष्ठ परिशिष्ट में महाभारत से उद्धृत प्रसंग से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पौरव द्वारा शासित पन्जाब के इस भाग में रहने वाली जाति को पर्वतीयमहारथ नाम से भी पुकारा है। पाणिनी ने भी अपने एक सूत्र में (४-२-१४३) पन्जाब के अन्तर्गत पर्वत नाम एक प्रदेश का तक्षशिलादि (४, ३ ,९. ३) के साथ वर्णन किया है। यह तो विदित है कि तक्षशिला देश पोरस के राज्य से बिल्कुल सटा हुआ था। हुवानच्वांग के समय में भी पन्जाब का कुछ भाग जो पूर्व समय में पोरस के आधीन था पर्वत कहलाता था। इन बातों से यह पता चलता है कि पर्वतक और पर्वतेश्वर पौरवों की अन्य उपाधियां थीं। इन उपाधियों से यह भी ज्ञात होता है कि पौरव के राज्य में कुछ महत्वपूर्ण पहाड़ी प्रदेश था। हम ऊपर बता चुके हैं कि पोरस के राज्य में नमक के पहाड़ के कुछ भाग शामिल थे। सम्भव है कि झेलम और व्यास के मध्यवर्ती समतल भू–भाग के अतिरिक्त उसके पार्श्ववर्ती काश्मीर के आधुनिक नौशेरा और जम्बू के पहाड़ी ज़िले भी पोरस के आधीन रहे हों। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी प्रदेश से नावों का बेड़ा बनाने के लिये लकड़ी के लठे सरलता से प्राप्त हो गये थे, जिनमें एलेक्ज़ेन्डर तथा उसकी सेना बैठकर झेलम से होकर समुद्र की ओर गई थी। इस से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पोरस ग्रीक इतिहासकारों के अभिसार देश के बिल्कुल पड़ौस में था। अभिसार राज्य के अन्तर्गत आधुनिक पच, और

पार्श्ववर्ती काश्मीर के अन्य ज़िले माने जाते हैं। हमें युनानी ऐतिहासकों से भी यह ज्ञात होता है कि अभिसार नरेश पोरस का पड़ौसी और मित्र था। बाद में अभिसार राज्य काश्मीर राज्य में सम्मिलित करलिया गया था। सम्भवत: इसी कारण मुद्राराक्षस नाटक के प्रणेता ने इसकी कोई चर्चा नहीं की।

(३) पाटलीपुत्र से पोरस तथा पर्वतक दोनों की राजधानियों का अन्तर एक ही था।

मुद्राराक्षस नाटक के अनुसार पाटलीपुत्र तथा मलयकेतु की राजधानी का अन्तर १०० योजन के लगभग था[६]। योजन के परिमाण के लिये अभी ठीक ठीक निर्धारण नहीं हो सका है। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि प्राचीन समय में भारतवर्ष में योजन के दो नाप थे, और दोनों एक हाथ य ९६ अंगुल पर आधारित थे। एक छोटा योजन था, जो १६००० हाथ य ८००० गज य लगभग ४ मील का होता था। दूसरा बड़ा योजन ३२००० हाथ य १६००० गज य लगभग ९ मील का होता था। बड़ा योजन ही प्राचीन भारत में विशेषरूप से काम में लाया जाता था, और ज्योतिष शास्त्र में भी इसी का प्रयोग होता था। यदि योजन को लगभग ९ मील के बराबर माना जाय तो मलयकेतु की राजधानी और पाटलीपुत्र का अन्तर ९००मील के लगभग ठहरता है। पाटलीपुत्र और पोरस के राज्य की पश्चिमी सीमान्त झेलम का अन्तर भी ९०० मील के

---

(६) योजनशत समधिक को नामगतागतमिह करोति।
अस्थानगमनगुर्वी प्रभोराज्ञा यदि न भवति ॥१॥
मुद्राराक्षस अ ४

लगभग है। इस प्रकार बहुत सम्भव है कि पाटलीपुत्र और पोरस की राजधानी का अन्तर भी १०० योजन या ९०० मील होगा। यह कहना कठिन है कि पोरस की राजधानी ठीक कहां थी। यदि हम उस को झेलम नदी के आस पास रखते हैं तो उस का और पाटलीपुत्र का अन्तर लगभग ९०० मील है जो पाटलीपुत्र तथा पर्वतक की राजधानी का भी अन्तर है।

(४) मगध के अधिपति नन्द के मूलोच्छेदन में चन्द्रगुप्त और पोरस की सहकारता।

मुद्राराक्षस नाटक से यह नितान्त स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रगुप्त ने शक, यवन, काम्बोज, पारसी, बाल्हीक आदि[७] की सहायता से मगध के नन्दों का उन्मूलन किया। हम आगे चलकर यह बतायेंगे कि यह सब जातियां भारत के पश्चिमोत्तर में निवास करती थीं।

चन्द्रगुप्त के अभ्युत्थान के पूर्व उत्तर भारत में दो शक्तिशाली राजा थे। पश्चिम में पोरस और पूर्व में नन्द। पोरस बहुत ही आकांक्षी सम्राट् था। भारत में एलेक्ज़ेन्डर के आने से पूर्व ही उसने अपना राज्य बढ़ाना आरम्भ कर दिया था। एलेक्ज़ेन्डर

(७) अस्ति तावच्छकयवनकिरातकाम्बोजपारसीकबाल्हीकप्रभृतिभिश्चाणक्यमतिपरिगृहीतैश्चन्द्रगुप्तपर्वतेश्वरबलैरुदधिभिरिव प्रलयोच्चलितसलिलैः समन्तादुपरुद्धं कुसुमपुरम्।

मुद्राराक्षस, अंक २.

इन सब जातियों का नया परिचय हमने बारहवें अध्याय में दिया है।

के आक्रमण के बाद तो पोरस की प्रतिष्ठा, शक्ति और राज्य में पहिले से कितनी अधिक वृद्धि हो गयी थी। जैसा कि हम पिछले अध्याय में बता आये हैं, एलेक्ज़ेन्डर के भारत से जाने के पश्चात् चन्द्रगुप्त की भांति पोरस भी अपने राज्य को और अधिक विस्तृत करने के लिये उत्साहित हुआ, और उसने भी लोक निन्दित नन्द का मूलोच्छेदन कर पूर्व की ओर मगध तक अपनी विजय पताका फह-रानी चाही। चन्द्रगुप्त ने पश्चिमोत्तर प्रदेश से आकर मगध पर विजय प्राप्त की, परन्तु यह किसी भी दशा में बिना पोरस के राज्य की, जो बीच में पड़ता था, सहकारिता के सम्भव न थी। मुद्राराक्षस नाटक में यह स्पष्ट किया हुआ है कि मगध पर विजय प्राप्त करने में चन्द्रगुप्त का सहायक पर्वतक ही था। इस बात को जब हम अपने इस निष्कर्ष के साथ-साथ रखते हैं कि पर्वतक और पोरस द्वारा शासित प्रदेश एक ही था तो हमें यह विश्वास हो जाता है कि मगध के आक्रमण में पोरस ने भी भाग लिया था और वह मुद्राराक्षस का पर्वतक ही था।

(५) पोरस और पर्वतक दोनों का एलेक्ज़ेन्डर के भारतवर्ष से लौटने के शीघ्र ही बाद वध हुआ।

प्राचीन योरोपीय ऐतिहासिकों के वृत्तान्तों से यह अनुमान किया जाता है कि एलेक्ज़ेन्डर के भारत से लौटने के थोड़े समय पश्चात् ही पोरस का वध कर दिया गया था। इसी प्रकार नाटक के पर्वतक का बध चन्द्रगुप्त द्वारा नन्द के उन्मूलन के समय हुआ। और यह घटना भी एलेक्ज़ेन्डर के भारत से लौटने के थोड़े

दिन बाद की है। नाटक के अनुसार पर्वतक का वध चन्द्रगुप्त के सिंहासन को सुदृढ़ बनाने के लिये किया गया था। चन्द्रगुप्त के विनाश और मगध के समस्त राज्य को अपने राज्य में सम्मिलित करने के अभिप्राय से पर्वतक ने नन्द के मन्त्री राक्षस से मेल किया था। यही बात शक्तिशाली और आकांक्षी पोरस के लिये भी कही जा सकती है, उसके जीवित रहते चन्द्रगुप्त का भारतवर्ष का चक्रवर्ती सम्राट बने रहना सुरक्षित नहीं था। विदित होता है कि पोरस का भी राजनैतिक कारणों से वध हुआ।

(६) पोरस और पर्वतक दोनों ही अपने समय में चन्द्रगुप्त से शक्तिशाली माने जाते थे।

हम ऊपर बता चुके हैं कि एलेक्ज़ेन्डर के आक्रमण के पश्चात् पोरस उत्तरीय भारत का सबसे शक्तिशाली सम्राट् बन गया था, उस ही के सहयोग से चन्द्रगुप्त ने मगध पर विजय प्राप्त की, और चन्द्रगुप्त के मगध पर विजय करने के पश्चात् उसका बध कर दिया गया। इसमे यह स्पष्ट हो जाता है कि अपने समय में पोरस चन्द्रगुप्त से बढ़ा बढ़-चढ़ कर था। मैगस्थनीज़ से हमें ज्ञात होता है कि वह भारत के शक्तिशाली सम्राट् चन्द्रगुप्त के दरबार में रहा और कुछ समय पोरस के दरबार में भी रहा जो चन्द्रगुप्त से भी शक्तिशाली था[८]। मुद्राराक्षस नाटक में भी इस तथ्य का उल्लेख है कि पर्वतक चन्द्रगुप्त से शक्ति शाली था।[९]

---

(८) M Crindle's Ancient India as described by Megasthenes and Arrian / पृ २००

(९) यतस्तस्मिनकाले सर्वार्थसिद्धि राजानमिच्छतो राक्षसस्य चन्द्रगुप्तादपि बलीयस्तया सुगृहीतनामा देव पर्वतेश्वर ..
अंक ५.

यदि हम उस समय के इतिहास का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें तो उक्त कथन कि पर्वतक चन्द्रगुप्त से भी शक्तिशाली या महान् पोरस के अतिरिक्त अन्य किसी सम्राट् के लिये प्रयुक्त नहीं हो सकता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जबतक पोरस जीवित था भारत में सब से शक्तिशाली राजा वही था। उसकी मृत्यु के पश्चात् ही सारे उत्तरीय भारत पर चन्द्रगुप्त का साम्राज्य फैला।

इस प्रकार जब हम इन सब बातों पर ध्यान देते हैं कि मगध पर विजय प्राप्त करने में पर्वतक चन्द्रगुप्त का प्रमुख सहायक था, दूसरी ओर पश्चिमोत्तर भारत से चलकर बीच में बिना पोरस की सहायता के चन्द्रगुप्त को मगध पर विजय प्राप्त नहीं हो सकती थी, पर्वतक और पोरस का राज्य एक ही था, पाटलीपुत्र से पोरस तथा पर्वतक की राजधानी का अन्तर भी समान था, पोरस संस्कृत शब्दों पुरु और पौरव, जो वंशानुगत उपाधियां थी का अन्य रूप है और पुरु तथा पौरवों को ही पर्वतक और पर्वतेश्वर कहकर पुकारा है, पोरस और पर्वतक दोनों का नन्द के मूलोच्छेदन के बादही चन्द्रगुप्त के राज्यसिंहासन को सुदृढ़ बनाने के लिये वध हुआ दोनों को उनके समय में स्वयं चन्द्रगुप्त से भी शक्तिशाली कहा गया है, तो इन विभिन्न तथ्यों की परस्पर तुलना करने पर हमें निश्चयात्मकरूप से यह विदित होता है कि मुद्राराक्षस का पर्वतक या पर्वतेश्वर ग्रीक इतिहासकारों का पोरस ही है।

अध्याय ६

चन्द्रगुप्त मौर्य नन्द वंशीय नहीं था।

यह आख्यान तो बहुत बाद के युग का है कि चन्द्रगुप्त की माता (या अन्य कथानुसार उसकी पितामही) मुरा मगध के राजा नन्द की एक नीच कुल जात स्त्री थी, और चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित वंश की उपाधि मुरा के नाम पर पड़ी। इस आख्यान का कोई भी प्राचीन उल्लेख नहीं मिलता। १७१३ ए डी में ढुंढिराज द्वारा लिखित विशाखदत्त के मुद्राराक्षस नाटक की प्रस्तावना या लगभग उसी समय की विष्णु पुराण की एक टीका को छोड़ और कहीं से भी उक्त कथा का कोई वृत्तान्त प्राप्त नहीं होता। विष्णुपुराण की इस टीका में भी केवल यह ही कहा गया है कि चन्द्रगुप्त और उसके वंश का नाम मौर्य इस कारण पड़ा कि वह मुरा नाम पत्नी से नन्द का पुत्र था। "चन्द्रगुप्त नन्दस्यैव पत्न्यन्तरस्य मुरासंज्ञस्य पुत्रं मौर्याणां प्रथमम"। यह तो केवल मौर्य नाम की अटकल पच्चू उत्पत्ति बताने का यत्न है। पर इस में भी मुरा या चन्द्रगुप्त की नीच उत्पत्ति का कुछ जिक्र नहीं है। मुरा को नीच जात बनाकर और मौर्यों को उसकी सन्तान बनाकर नीच जात कहना तो केवल अठारहवीं शताब्दि में ढुंढिराज का ही काम मालूम होता है।

धनन्जय के 'दशरूपक' पर धनिक द्वारा की हुई टीका से ज्ञात होता है कि मुद्राराक्षस का कथानक बृहत्कथा से लिया गया है। पैशाची में गुनाढ्य द्वारा प्रणीत बृहत्कथा का रचना काल ईसवी सम्वत् की पहली शताब्दि या उसके आसपास का समय है। गुनाढ्य के इस असली महत्वपूर्ण ग्रन्थ का अब कोई पता नहीं लगता। अगर इस ग्रन्थ का पता लग जाय तो सम्भवतः इससे भारत के प्राचीन इतिहास पर बहुत ही अमूल्य प्रकाश पड़े। कहा जाता है कि गुनाढ्य के कई शताब्दियों बाद सोमदेव ने कथा-सरितसागर और क्षेमेन्द्र ने बृहत्कथामंजरी को बृहत्कथा के आधार पर लिखा था। इन दोनों लेखकों ने काश्मीर में जो कथाएं बृहत्कथा के नाम से प्रचलित थीं उन्हीं को असली बृहत्कथा माना है। प्रो फेलिक्स लेकोटे ने दिखाया है कि नैपाल में जो बृह-त्कथा श्लोकसंग्रह मिला है वह बहुत कुछ काश्मीरी कथाओं से भिन्न है। इस कारण यह कहना कठिन है कि असली बृह-त्कथा में किन घटनाओं का उल्लेख है। कथासरितसागर और बृहत्कथामंजरी दोनों में चन्द्रगुप्त की माता या पितामही मुरा का कोई जिक्र नहीं है, और न ही उसके जारज पुत्र या नीच-जन्मा होने पर ही कोई संकेत मिलता है। उन में तो चन्द्रगुप्त को

---

(१) योगनन्दे यश शेष पूर्वनन्दसुतस्ततः ।
चन्द्रगुप्तो कृतो राजा चाणक्येन महौजसा ॥
(बृहत्कथामंजरी)

महामन्त्री ह्यय स्वेच्छमचिरात्त्वा विनाशयेत् ।
पूर्वनन्दसुत कुर्याच् चन्द्रगुप्त हि भूमिपम् ॥
(कथासरितसागर)

केवल पूर्वनन्द सुत कहा है। ऐसा मालूम होता है कि धनिक ने मुद्राराक्षस के कथानक के लिये बृहत्कथा को यथार्थ प्रमाण मानते हुए जो कुछ लिखा है वह क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी से उद्धृत किया है[2]।

अगर हम पुराणों की शरण लेते हैं तो उनमें तो केवल इसी एक तथ्य का उल्लेख किया गया है कि चन्द्रगुप्त ने कौटल्य की सहायता से नन्द वंश का पूर्णरूपेण उन्मूलन और विनाश कर, मगध के राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया। उन में तनिक भी संकेत नहीं किया गया है कि नन्द से चन्द्रगुप्त का कोई सम्बन्ध था। दूसरी ओर हमें उन में स्पष्ट लिखा मिलता है कि महापद्म नन्द महानन्दि का जारज पुत्र था। अगर चन्द्रगुप्त नन्द का औरस या जारज कैसा भी पुत्र होता, तो उसका उल्लेख भी पौराणिक परम्परा में अवश्य किया जाता। वायु, विष्णु, मत्स्य, ब्रह्माण्ड और भागवत पुराणों में बहुत ही न्यून अन्तर के साथ नन्द और मौर्य वंश पर निम्न विवरण मिलता है।

महानन्दिसुत. शूद्रागर्भोद्भवोऽतिलुब्धो महापद्मो नन्दः परशुराम इवापरोऽखिलक्षत्रान्तकारी भविता ॥४॥

(२) धनिक के निम्न लिखित प्रकरण की ऊपर के बृहत्कथामंजरी और कथासरितसागर के प्रसंगों से तुलना कीजिये।

तत्रबृहत्कथामूलं मुद्राराक्षसम्—

चाणक्यनाम्ना ते नाथ शकटालगृहे रह।
कृत्यां विधाय सहसा सपुत्रो निहतो नृपः॥
योगानन्दयशः शेषे पूर्वनन्दसुतस्ततः।
चन्द्रगुप्तः कृतो राजा चाणक्येन महौजसा॥

इति बृहत्कथायां सूचितम्॥

ततः प्रभृति शूद्रा भूमिपाला भविष्यन्ति । स चैकच्छत्रामनुल्लङ्घितशासनो महापद्मः पृथिवीं भोक्ष्यन्ति॥५॥
तस्याप्यष्टौ सुताः सुमाल्याद्या भवितारस्तस्य च महापद्मस्यानु पृथिवीं भोक्ष्यन्ति महापद्मस्तत्पुत्राश्चैकं वर्षशतमवनीपतयो भविष्यन्ति । नवैव तान्नन्दान्कौटिल्यो ब्राह्मणः समुद्धरिष्यति ॥६॥
तेषामभावे मौर्याश्च पृथिवीं भोक्ष्यन्ति कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तं राज्येऽभिषेक्ष्यति ॥७॥ विष्णु पुराण ४, २४

यह विचारना कि उक्त पौराणिक प्रकरण में चन्द्रगुप्त को शूद्र कहा गया है नितान्त भ्रमात्मक है। पुराणों में वस्तुतः उसे शूद्र नहीं कहा गया है। नन्दों के लिये मत्स्य, वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों में, "ततः प्रभृति राजानो भविष्या शूद्रयोनयः" और विष्णु तथा भागवत पुराणों में, "ततो नृपा भविष्यन्ति शूद्रप्रायास्त्वधार्मिका", जो लिखा गया है उससे नन्द और उनके पश्चात् के सभी राजा शूद्र नहीं हो सकते, क्योंकि शुंग और कण्व अवश्य ही शूद्र नहीं थे।

इस कथन के कि चन्द्रगुप्त मुरा नामक नीच जाति की एक स्त्री से नन्द का जारज पुत्र था पोषण के लिये कुछ विद्वानों ने मुद्राराक्षस नाटक का आश्रय लिया है। क्योंकि उसमें बहुधा चाणक्य ने वृषल कहकर चन्द्रगुप्त को पुकारा है। जैसा कि श्रीयुत बी. सी. ला ने हो, जिनका अन्यथा मत है कि बौद्ध ग्रन्थों में चन्द्रगुप्त को ठीक ही मौर्य नामी एक क्षत्रीय वंश का माना है, लिखा है कि "विशाखदत्त के मुद्राराक्षस नाटक में चन्द्रगुप्त के लिये वृषल शब्द प्रयोग किया है अर्थात नीच कुल में जन्म लेने वाला व अन्तिम नन्द राजा का मुरा नामक एक शूद्र स्त्री से उत्पन्न

जारज पुत्र"[३]। नाटक के आधार पर मुरा के आख्यान का निष्कर्षण बहुत ही अनुपयुक्त है। इस मत का विशेष आधार यही है कि नाटक में चन्द्रगुप्त के लिये चाणक्य द्वारा प्रयुक्त शब्द वृषल का अर्थ शूद्र किया गया है। परन्तु नाटक के निम्न लिखित प्रकरण से यह नितान्त असगत प्रतीत होता है कि चाणक्य ने इस अभिप्राय से वृषल शब्द का प्रयोग किया है।

चाणक्य - (नाट्येनाल्ह्यावलोक्य च सहर्षमात्मगतम्।) अये सिंहासन मध्यास्ते वृषल। साधु साधु।

नन्दैर्विमुक्तमनपेक्षितराजवृत्तै
अध्यासितं च वृषलेन वृषण राज्ञाम्।
सिंहासन सदृशपार्थिवसत्कृत च
प्रीतिं त्रयस्त्रिगुणयन्ति गुणा ममैते ॥२॥

(उपसृत्य) विजयतां वृषल।

राजा - (आसनादुत्थाय चाणक्यस्य पादौ गृहीत्वा।) आर्य चन्द्रगुप्त प्रणमति।

चाणक्य — (पाणौ गृहीत्वा) उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्स। (अक ३)

नाटक के निम्न लिखित प्रकरण से मालूम होता है कि चन्द्रगुप्त की ओर से चाणक्य ने जो आज्ञा दी है वह भी वृषल की आज्ञा कहलाई है,

चाणक्य.— वत्स उच्यतामस्मद्वचनात् कालपाशिको दण्ड-पाशिकश्च यथा वृषलः समाज्ञापयति। य एष क्षपणको जीवसिद्धी राक्षसप्रयुक्तो विषकन्यया पर्वतेश्वर घातितवान् स एनमेव दोष प्रख्याप्य सनिकार नगरान्निर्वास्यतामिती। (अक १)

यहा "वृषलः समाज्ञापयति" का उचित अर्थ यही हो

(३) Some Ksatriya Tribes of Ancient India पृ १११

सकता है कि "राजा ने आज्ञा दी"। इसका अर्थ शूद्र ने आज्ञादी है नितान्त असगत होगा। मुद्राराक्षस नाटक के अन्य स्थलो पर भी चाणक्य द्वारा प्रयुक्त वृषल शब्द 'देव' और 'राजन्' शब्दों का पर्यायवाची है। नाटक की विभिन्न हस्तलिखित प्रतिलिपियों के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि भिन्न भिन्न प्रतिलिपियों मे अनेक स्थलो पर वृषल के स्थान पर उक्त उपाधियों का प्रयोग किया गया है[४]।

यदि चाणक्य ने वृषल शब्द का उपयोग शूद्र की भावना से लिया है या जैसा कि कुछ अन्य विद्वान् कहते हैं अवैदिक होने की भावना से, तो हमारी समझ में यह नहीं आता कि स्वयं उसी के द्वारा रक्षित इतने महान् अधीश्वर को उसके निजि तो क्या सार्वजनिक जीवन में भी चाणक्य इतने अपमान जनित रूप से क्यों अभिहित करता। यह कहना ठीक न होगा कि अपनी कुत्सित आत्मतुष्टि के लिये ही चाणक्य ऐसा करता था। नाटक में निरन्तर अभिव्यक्त चन्द्रगुप्त और उसके संरक्षक की घनिष्ट आत्मयता को देखते हुए, यह सर्वथा अवांछनीय प्रतीत होता है कि वह सदा चन्द्रगुप्त को उसके नीच जन्म की अनुभूति कराता रहे। इसी प्रकार अन्तिम अंक में भी चाणक्य द्वारा चन्द्रगुप्त को वृषल कहा जाना नितान्त अशिष्ट (और नाट्य शास्त्र के भी विरुद्ध) प्रतीत होगा, जबकि मित्रता स्थापित

कराने के लिये वह राक्षस की मुलाकात नवीन मौर्य सम्राट् से कराता है।

चाणक्य — सर्वं मे वृषलस्य धीर भवता सयोगमिच्छनय ।
तदप वृषलस्त्वां द्रष्टुमागच्छति ।

अंक ७

यदि चाणक्य चन्द्रगुप्त के लिये वृषल शब्द को अपमानित भाव में प्रयोग करता था तो कम से कम ऐसे समय पर तो उसको ऐसे शब्द को इस्तमाल नहीं करना चाहिये था। चाणक्य यह भली प्रकार जानता था कि राक्षस के हृदय में चन्द्रगुप्त के प्रति कैसे भाव थे। और इस समय चन्द्रगुप्त को शूद्र की उपाधि से पुकार कर चाणक्य मूर्खतावश राक्षस को स्मृत करता है कि तत्पश्चात् उसको मगध के सिंहासन पर एक शूद्र अधिपति का पक्षपाती होना पड़ेगा। विचारिये! इस दशा में राक्षस को ऐसे व्यक्ति के प्रति जिसने उसके पूज्य स्वामी नन्द का मूलोच्छेदन किया हो, अधिक रूष्ट कराने का इससे बढ़ कर और क्या साधन हो सकता था?

हमारा तो यह मत है कि नाटक में चाणक्य द्वारा चन्द्रगुप्त के लिये वृषल शब्द का प्रयोग किसी प्रकार भी बुरी भावना से नहीं किया गया है। वह तो केवल राज्योचित उपाधि मात्र है। मेदनी ने वृषल शब्द के निम्न लिखित पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख किया है।

वृषलो गृञ्जने शूद्रे चन्द्रगुप्तेऽपि राजनि ॥ १३४ ॥

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि मेदनी के अनुसार वृषल चन्द्रगुप्त की उपाधि थी। सम्भवत. चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में

जो वृषल शब्द का प्रयोग हुआ है वह ग्रीक शब्द बसिलिओ (Basileus) का संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप बसल है, और यह ग्रीक भाषा में राजन् के स्थान पर प्रयुक्त होता था। राजा के स्थान पर बसिलिओ और राजातिराज व महाराज के स्थानपर बसिलियो बसिलियन का प्रयोग अनेक भारतीय राजाओं ने अपने द्विभाषिक सिक्कों में किया है। उदाहरणार्थ कडफिज़ तथा अज़े ने, जो ग्रीक परम्परा में नहीं थे, राजातिराज के साथ बसिलिओ बसिलियन की उपाधि धारण की। एरियन आदि पुराने योरोपीय इतिहासकारों ने चन्द्रगुप्त को सदैव "इन्डियन बसिलिओ" कहकर पुकारा है। बहुत सम्भव है कि चन्द्रगुप्त की युनानी प्रजा इस उपाधि से उसे पुकारती हो। इसके अतिरिक्त इसका एक कारण और भी हो सकता है, चन्द्रगुप्त के एक युनानी पत्नी (सेल्युकस की पुत्री) भी थी, अतः कभी कभी ग्रीक उपाधि से उसे अभिहित किया जाना किसी प्रकार असंगत प्रतीत नहीं होता। मुद्राराक्षस नाटक का रचयिता सम्भवतः इस दन्तकथा से अवगत हो, और उसने अभिज्ञ रूप से इस उपाधि का प्रयोग किया हो। कालान्तर में नाटक के प्रणेता के समय में 'वृषल' (ग्रीक बसिलिओ) शब्द की महत्ता का लोप हो कर, उसका समावेश अन्य ही शब्द वृषल में हो गया हो, जिसका अर्थ पहिले तो एक ऐसे व्यक्ति का था जिस में ब्राह्मणत्व न हो या जो अवैदिक हो और पुनः जिस का अर्थ शूद्र हो गया।

नाटक में केवल दो स्थल ऐसे हैं जहां निश्चयरूप से वृषल शब्द में लघुता का भाव प्रकट होता है। परन्तु दोनों स्थलों में से किसी पर भी वृषल का प्रयोग चाणक्य द्वारा नहीं हुआ है। एक स्थान पर चन्द्रगुप्त का कंचुकी, चाणक्य के दीन हीन निवास स्थान को देख कर कटाक्ष करता है,

ततः स्थानेऽस्य वृषलो देवश्चन्द्रगुप्तः। कुतः।
स्तुवन्त्यश्रान्तास्याः क्षितिपतिम भूतैरपि गुणै
प्रवाच. कार्पण्याद्यदवितथवाचोऽपि कृतिनः।
प्रभावस्तृष्णायाः स खलु सकलः स्यादितरथा
निरीहाणामीशस्तृणमिव तिरस्कारविषय. ॥ १६ ॥ अंक ३

दूसरे स्थान पर राक्षस आक्षेप करता है।

पतिं त्यक्त्वा देवं भुवनपतिमुच्चैरभिजनं
'गता सा श्री' शीघ्र वृषलमविनीतेव वृषली ॥ ६ ॥ अंक ६

यहां अवश्य ही यह बात ध्यान देने योग्य है कि हिलब्रेण्ड ने जिस एक हस्त लिखित प्रतिलिपि का प्रयोग किया है उस में "ततः स्थानेऽस्य वृषलो देवश्चन्द्रगुप्तः" के स्थान पर "ततः स्थाने खल्वस्य मुखप्रेक्षको वृषलो देवश्चन्द्रगुप्तः" पाठ है। इस पाठ से स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रकरण में भी वृषल का प्रयोग बुरी भावना से नहीं किया गया है, प्रत्युत यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण उपाधि है। इस पाठ की समीचीनता का प्रश्न उठाये बिना हम यह मत प्रकट कर सकते हैं कि उक्त दोनों प्रकरणों में वृषल शब्द का प्रयोग श्लेषात्मक है।

विशाखदत्त की नाट्य कला की उपर्युक्त प्रशंसनार्थ, और चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्वों, तथा मुद्राराक्षस नाटक द्वारा अभिव्यक्त

उनके सम्बन्ध को भली प्रकार समझने के लिये, यह परम आवश्यक है कि हम चाणक्य द्वारा प्रयुक्त वृषल शब्द के भाव को ठीक ठीक समझें। चाणक्य चन्द्रगुप्त को वृषल कहता है यह युक्ति देकर मुरा की कथा का समर्थन करना बहुत असगत होगा।

इसके अतिरिक्त सस्कृत की व्याकरण के नियमानुसार मुरा की सतान मौरेय शब्द से अभिहित होगी न कि मौर्य से। सभी सस्कृत ग्रथो मे, जिनमें मौर्य वश का प्रसग आया है चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित राजवश को मौर्य नाम से ही अभिहित किया है। गिरनार वाले रुद्रदामन के शिलालेख में भी इसी शब्द की इस वश के लिये दो बार आवृत्ति हुई है।

यदि मुरा और नन्द का आख्यान वस्तुत सत्य है तो यह स्वीकार करना कि चन्द्रगुप्त ने एक नवीन वश की स्थापना की हास्यास्पद है। दुण्ढिराज ने स्वय यह मत उपस्थित किया है कि मुरा नन्द की पत्नियों मे से एक थी।

राज्ञ पत्नी सुनन्दासीज्ज्येष्ठान्या वृषलात्मजा।
मुराख्या सा प्रिया भर्तु शीललावण्यसपदा ॥ २५ ॥

प्राचीनतम हिन्दू परम्परा के अनुसार उच्च वर्णीय पुरुषों का विवाह नीच जाति की स्त्रियों के साथ निषिद्ध न था। हिन्दू राजाओं ने बहुत ही नीच जातियों की कन्याओं के साथ विवाह किया। उनकी सन्तानों को कभी जारज या शूद्र उपाधियां नहीं दी गयीं। हम शन्तनु और मत्स्यगन्धा के वैवाहिक सम्बन्ध की स्मृति कराते हैं, जिनसे कौरवों और पाण्डवों के समान महान् पुरुषों की उत्पत्ति हुई।

, इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि मुरा के आख्यान या चन्द्रगुप्त के नीच कुल में जन्म होने की धारणा का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। सम्भवतः वृषल शब्द की अयुक्त धारणा के कारण ही यह भ्रममूलक विश्वास फैला कि चन्द्रगुप्त शूद्र और नीच जन्मा था। बहुधा देखा गया है कि जब एक बार कोई ऐसा विश्वास प्रचलित हो जाता है, तो लेखक उसके लिये किसी न किसी प्रमाण की कल्पना करने ही लगते हैं। यही बात चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित वंश की उपाधि मौर्य के साथ हुई होगी। बहुत से ऐसे अन्य उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं, जिनमें ऐसी ही कल्पित शाब्दिक व्युत्पत्ति द्वारा व्यक्तियों और वंशों के नाम की उत्पत्ति बताई गई है। उदाहरणार्थ बृहनारदीय पुराण में अश्मकों की उत्पत्ति का निम्न लिखित विवरण दिया है। सुदास की भार्या रानी मदयन्ती ने सात वर्ष तक गर्भ धारण किया। तत्पश्चात् रानी ने 'अस्म' (पत्थर के टुकड़े) से गर्भाशय पर आघात किया, जिससे उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ और इस कारण उसका नाम अश्मक पड़ा। वास्तव में ऐसा मालूम होता है कि अश्मक और अश्वक एक ही शब्द हैं। 'म' और 'व' परस्पर स्थानान्तरित वर्ण है, जैसा कि रामण और रावण में। अश्वक से हमें ग्रीक इतिहासकारों के असकनोई (Assakenois) और अस्पसोई (Aspasoi) की स्मृति हो आती है। यह अश्वक जाति के ग्रीक नाम हैं, और जैसा कि हम पिछले एक अध्याय में बता आये हैं यह जाति एलेक्ज़ेन्डर के आक्रमण के समय सिन्ध नद के पश्चिम में निवास करती थी।

संस्कृत के 'अश्व' से और फ़ारसी के 'अस्प' से जिनका अर्थ घोड़ा है, अश्वक शब्द की व्युत्पत्ति का हमें ज्ञान होता है। प्राचीन तथा इस समय में भी यह प्रदेश जहाँ अश्वक रहते थे श्रेष्ठ जाति के घोड़ों के लिये प्रसिद्ध है। ग्रीक लोगों ने अश्वक का अनुवाद हिपेसिओई (यह ग्रीक शब्द हिपोस से बना है, जिसका अर्थ घोड़ा है) किया है। इससे यह स्पष्ट अभिव्यक्त होता है कि वे उसकी शाब्दिक व्युत्पत्ति से भली भांति परिचित थे। आधुनिक अफ़ग़ानिस्तान प्रदेश का यह नाम भी सम्भवतः प्राचीन समय से ही अश्वक शब्द से सम्बद्धित है। दूसरा उदाहरण लीजीये, विष्णु पुराण का यह मत कितना असंगत है कि इक्ष्वाकु इस नाम से इस कारण अभिहित हुआ क्योंकि वह मनु की छींक (क्षवा) से उत्पन्न हुआ था। इस प्रकार की कल्पित शाब्दिक व्युत्पत्ति वास्तविक ऐतिहासिक घटनाओं को अन्धकारमय बना देती हैं।

यह तो हम ऊपर दिखा आये हैं कि मुद्राराक्षस नाटक से नन्द मुरा की काल्पनिक गाथा का समर्थन करना कितना असंगत होगा। पर मुद्राराक्षस नाटक के आधार पर निश्चयरूप से यह कहना भी कि चन्द्रगुप्त नन्द वंश से नहीं था कठिन हो जाता है, क्योंकि नाटक में दो एक जगह तो ऐसा मालूम होता है कि नन्दों से चन्द्रगुप्त का सम्बन्ध था, परन्तु नाटक के निम्न लिखित प्रकरणों से निसन्देह यह अभिव्यक्त होता है कि चन्द्रगुप्त का

नन्दो से कोई सम्बन्ध न था, और चाणक्य ने मगध के सिंहासन पर चन्द्रगुप्त को बैठा कर वहां एक नये राजवंश की स्थापना की,

(१) चाणक्य —अगृहीते राक्षसे किमुत्खातं नन्दवंशस्य किं वा स्थैर्यमुत्पादितं चन्द्रगुप्तलक्ष्म्याः। (विचिन्त्य) अहो राक्षसस्य नन्दवंशे निरतिशयो भक्तिगुणः। स खलु कस्मिंश्चिदपि जीवति नन्दान्वयावयवे वृषलस्य साचिव्यं ग्राहयितुं न शक्यते। अंक १

(२) राक्षस — उत्सन्नाश्रयकातरेव कुलटा गोत्रान्तरं श्रीर्गता। अंक ६

(३) वज्रलोमा —नन्दकुलनगकुलिशस्य मौर्यकुलप्रतिष्ठापकस्य आर्यचाणक्यस्य। अंक ४

(४) चन्द्रगुप्त —किमतः परमपि प्रियमस्ति ?

राक्षसेन समं मैत्री राज्ये चारोपिता वयम्।
नन्दाश्चोन्मूलिताः सर्वे किं कर्तव्यमतः प्रियम् ॥ १८ ॥
अंक ७

उक्त अन्तिम प्रकरण के बारे में तो हम यह कह सकते हैं कि यदि चन्द्रगुप्त किसी अंश में भी नन्दों से सम्बन्धित होता तो अपने जीवित रहते वह कदापि यह न कह सकता था कि नन्दों का बिल्कुल उन्मूलन हो गया। इसके अतिरिक्त समस्त नाटक में चन्द्रगुप्त द्वारा व्यक्त उसकी भावनाओं और उसके वक्तव्यों से भी इस ही महत्वपूर्ण तथ्य का निरूपण होता है कि वह किसी प्रकार से भी नन्दवंश का नहीं था।

इसके अतिरिक्त नाटक द्वारा इस तथ्य का कि चन्द्रगुप्त नन्द वंश परम्परा से नहीं था और भी स्पष्टिकरण हो जाता है, क्यों कि चन्द्रगुप्त पर राजसिंहासन से बिल्कुल उदासीन नन्द वंश के अन्तिम राजा सर्वार्थसिद्धि के बध का कुछ भी असर न

पड़ा। दूसरी ओर नन्द वंश के उन्मूलन में अपने सहायक पर्वतक की मृत्यु पर चन्द्रगुप्त ने उसका अन्त्येष्टि संस्कार किया। हिन्दू रीति तथा शास्त्र के अनुसार इन संस्कारों को मृतक का पुत्र या कोई अन्य उसका निकट सम्बन्धी करता है। इस प्रकार नाटक से चन्द्रगुप्त का पर्वतक अथवा पोरस से सम्बन्ध तो ज्ञात होता है, परन्तु नन्दों के साथ नहीं। आगे चलकर नाटक में चन्द्रगुप्त के एक सम्बन्धी महाराज बलगुप्त[७] का भी प्रसंग आया है। महाराज बालगुप्त के अतिरिक्त नाटक में चन्द्रगुप्त के और भी पैतृक सम्बन्धियों का प्रसंग आया है[८]। अगर यह मान लिया जाय कि चन्द्रगुप्त नन्द वंशपरम्परा में था तो बलगुप्त तथा उसके अन्य सम्बन्धी भी उसी परम्परा से होने चाहियें। इस दशा में राक्षस को बलगुप्त या उसके अन्य किसी उक्त सम्बन्धी का पक्ष ग्रहण करना था। परन्तु उसने इनके स्थान पर मगध के बाहर के राजकुमार मलयकेतु का पक्ष लिया। इसके साथ ही, जैसा कि नाटक में स्पष्ट है, चाणक्य ने नन्द वंशीय किसी भी व्यक्ति के जीवित रहते चन्द्रगुप्त के लिये मगध के सिंहासन को सुरक्षित नहीं समझा; अतः वह सर्वार्थसिद्धि के समान महाराज बलगुप्त का भी नन्द वंशीय होने के कारण वध करा देता। इस से यह स्पष्ट

होता है कि चन्द्रगुप्त तथा बलगुप्त आदि उसके सम्बन्धी जिनका नाटक में ज़िक्र आया है नन्द वंश के नहीं थे।

यदि यह स्वीकार कर भी लिया जाय कि चन्द्रगुप्त का जन्म नन्द वंश में ही हुआ था तो मुद्राराक्षस नाटक के कथानक में कुछ जान नहीं रह जाती। चाणक्य ने समस्त नन्द वंश के मूलोच्छेदन की प्रतिज्ञा की थी,परन्तु अन्त में उन्हीं के एक वंशज को सिंहासन पर बैठाया। इसी प्रकार राक्षस के चरित्र में भी एकरूपता नहीं रहती। नन्द वंश की सेवा ही उसके जीवन की सर्वोच्च आकांक्षा थी परन्तु वह उनके सब से योग्य वंशज का बुरी तरह से विरोध करता है। उसके स्थान पर एक बाहर के राजकुमार को मगध के सिंहासन पर बैठाने तक को वह उद्यत होता है। वास्तव में तो मुद्राराक्षस नाटक का महत्व जब ही विदित होता है जब कि हम चन्द्रगुप्त को नन्द वंश का छोड़कर और अन्य किसी वंश का मान लें।

कमान्दक के निम्न लेख से भी यही विदित होता है कि चन्द्रगुप्त नन्द वंश का न था—

> यस्याभिचारवज्रेण वज्रज्वलनतेजस ।
> पपात मूलतश्श्रीमान्सुपर्वा नन्दपर्वत ॥
> एकाकी मन्त्रशक्त्या यश्शक्त्याशक्तिधरोपम ।
> आजहार नृचन्द्राय चन्द्रगुप्ताय मेदिनीम ॥
>
> —नीतिसार

इस प्रकार जब हम पुराणों तथा ब्राह्मणों द्वारा प्रणीत अन्य साहित्य को ध्यानपूर्वक देखते हैं तो हमको साफ़ साफ़ यह मालूम

होता है की चन्द्रगुप्त नन्द वंश का नहीं था। यही बात बौद्ध और जैन साहित्य से भी स्पष्ट होती है जिनमें कहीं पर संदेह मात्र भी यह नहीं कहा गया कि चन्द्रगुप्त नन्द वंश में उत्पन्न हुआ था। अगर चन्द्रगुप्त की नन्द परम्परा से उत्पत्ति का कोई भी ऐतिहासिक आधार होता तो हमारी समझ में यह नहीं आता कि बौद्ध और जैन परम्परा में इस तथ्य पर क्यों आवरण डाला गया। यह कहा जा सकता है कि सम्भवतः मुरा से सम्बन्धित नीच जन्म की छाप पर आवरण डालने के लिये बौद्ध और जैन साहित्य में चन्द्रगुप्त को नन्द वंश से पूर्णरूप से पृथक कर दिया गया है। परन्तु यदि इस आख्यान में लेश मात्र भी सत्य होता तो वे चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित वंश की 'मौर्य' उपाधि पर भी आवरण डाले बिना न रहते। इसी प्रकार प्राचीन योरोपीय ऐतिहासिकों ने भी जो कुछ चन्द्रगुप्त के विषय में लिखा है उसमें भी सन्देह मात्र कहीं यह नहीं कहा गया कि चन्द्रगुप्त नन्द वंश से था। वरन् प्लुटार्क के अनुसार जिन निन्दित शब्दों में चन्द्रगुप्त अपने से पूर्व के मगध के राजा का वर्णन किया करता था उनसे स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रगुप्त का उससे कोई सम्बंध न था। चन्द्रगुप्त कहा करता था कि मगध के उक्त राजा से, उसके नीच जन्म और उसकी चरित्र हीनता के कारण, सबही घृणा करते थे और उसको हराना कठिन नहीं था! अपने वैसे भी पूर्वज के बारे में कोई भी इस प्रकार की बात नहीं कहेगा।

अध्याय ७

चन्द्रगुप्त और मौर्य कुल इक्ष्वाकु वंशीय क्षत्री थे ।

पिछले अध्याय में हम यह बता आये हैं कि चन्द्रगुप्त नन्द वंश का नहीं था। अब हम यह प्रश्न उठाते हैं कि चन्द्रगुप्त कौन था। बौद्ध ग्रन्थों में जहां कहीं चन्द्रगुप्त और उसके द्वारा स्थापित मौर्य वंश का ज़िक्र आया है वहा उनको क्षत्री कहा गया है। दीर्घनिकाय के महापरिनिर्वाण सूत्र में मौर्यों को पिपली-वन के क्षत्री राजा कहा गया है। महावंश में भी चन्द्रगुप्त को मौर्य कुल का क्षत्री कहा है।

> मोरियान खतियान वसे जात सिरीधरं ।
> चन्द्रगुत्तो ति पञ्ञात चाणक्को ब्राह्मणो ततो ॥ १६ ॥
> नवम धननन्द तं घातेत्वा चण्डकोधसा ।
> सकले जम्बुदीपस्मिं रज्जे समभिसिञ्चसो ॥ १७ ॥
>
> परिच्छेद ५

उत्तरीय भारत के बौद्ध ग्रन्थ दिव्यअवदान में भी बिन्दुसार और अशोक को क्षत्री कहा है।

दो शिलालेखों से मौर्यों के क्षत्री होने की बौद्ध परम्परागत कथाओ का समर्थन होता है। इनमें से पहिला तो बम्बई प्रान्त में खान्देश ज़िले के वाघली स्थान पर एक शिव मन्दिर की स्थापना का है, और दूसरा मैसूर में जैनियों का है। यह दोनों शिला लेख

मध्यकालीन हैं, परन्तु इनसे उक्त बौद्ध कथन के समर्थन के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण पुष्ट प्रमाण प्राप्त होते हैं। वाघाली का शिला लेख १०६९ ऐ० डी० का है। उसमें प्रस्तावना के रूप में मौर्य वंशीय राजा गोविन्दराज की वंशावली दी हुई है। निश्चय ही इस शिलालेख में जिस मौर्य कुल की चर्चा है वह चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित शाही मौर्य वंश की एक शाखा है, क्यों कि प्राचीन शाही मौर्य वंश से सम्बद्धित छोटे छोटे मौर्य कुल छठवीं, सातवीं और आठवीं शताब्दि में पश्चिमी घाट और समुद्र के बीच के कोकन नामक प्रदेश में राज्य करते थे। बहुधा उनका प्रसंग कितने ही शिलालेखों में आया है। उक्त शिलालेख में मौर्य वंश की उत्पत्ति सूर्यवंशी राजा मान्धाता से बतायी गयी है। इस शिलालेख का प्रारम्भिक विवरण इस प्रकार है।

...मनुरभूत्तत्सुतात्सूर्यवंश । विख्यात सर्वलोकेष्वमलनृपगुणैरन्वित
कीर्तिधर्म्मैर्म्मा-धातुर्भूमिपालात्सकलगुणनिधेर्म्मौर्यवंशो बभूव ॥ १ ॥
आसीत्कैलासशृंगे रुचिर शशि सुधाशुभ्रगंगाप्रवाहे
दिव्यारामोपभोगात्सुरसुरनिकरोद्घुष्टकाम्यप्रलापे ।
सोम सोमार्द्धभूप सकलसुरनुत कामचित्तप्रदोप
सर्व्वेषां लौकिकानामशुभविहतये सोवतीर्ण्णं सुराष्ट्रम् ॥ २ ॥

तत्पश्चात् शिलालेख में मौर्यों की राजधानी वल्लभी नगर का विवरण दिया है, और उसके बाद गोविन्द राज से पूर्व मौर्य वंश में उत्पन्न कुछ राजाओं का।

जैन शिलालेख में, जो १४०२ ए डी का है, लिखा है कि नागखण्ड (माईसूर का आधुनिक शिकारपूर ताल्लुक) का

रक्षण, क्षात्र धर्म की साक्षात मूर्ति चन्द्रगुप्त द्वारा हुआ[1]। आगे के एक अध्याय में हम दिखायेंगे कि चन्द्रगुप्त ने स्वयं दक्षिण भारत के एक बड़े भाग पर विजय प्राप्त की थी। हमारे विचार में जिस चन्द्रगुप्त का उक्त शिलालेख में प्रसग है वह शक्तिशाली चन्द्रगुप्त मौर्य है।

बाघली के शिलालेख के इस कथन के, कि मौर्य वंश की उत्पत्ति सूर्यवंशीय मान्धाता से हुई, आधार पर हम बौद्धो की इस दन्त-कथा को कि मौर्य भी उसी वश परम्परा से थे जिससे स्वयं बुद्ध भगवान थे और भी प्रमाणित मानते हैं। अनेक बौद्ध ग्रन्थो, जैसे कि महावश, महावस्तु, ललितविस्तार आदि, के अनुसार बुद्ध भगवान् भी उक्त सूर्यवंश से थे, जिस में बौद्ध दन्तकथाओ के ही अनुसार मान्धाता, इक्ष्वाकु तथा अन्य शक्तिशाली सूर्यवंशी नरेश थे। इनमें से अनेकों के नाम पौराणिक सूर्यवशी राजाओं की वंश सूची में भी मिलते है। पौराणिक दन्तकथाओ के अनुसार भी बुद्ध भगवान् की वंश परम्परा सूर्य-वंश से सम्बद्ध है। विष्णु पुराण के अनुसार इस वंश का वृहद्दबल कुरुक्षेत्र के युद्ध में मारा गया था। इक्ष्वाकु के कुल के राजाओं की तूलिका में वृहद्दबल की वंश परम्परा में शाक्य, उनके पुत्र शुद्दोद्दन, और उनके पुत्र रातुल (अर्थात राहुल) हैं[2]। बौद्ध और पौराणिक सूचियों में पूर्णरूपेण साम्य नहीं है, परन्तु दोनो में अनेक महत्वपूर्ण राजाओ के एक ही नाम दिये हैं।

---

(१) चन्द्रगुप्तेन सुक्षात्रधर्म गेहेन धीमता।
(२) विष्णु पुराण. ४२२.

मध्यकालीन हैं, परन्तु इनसे उक्त बौद्ध कथन के समर्थन के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण पुष्ट प्रमाण प्राप्त होते हैं। बाघाली का शिला लेख १०६९ ऐ० डी० का है। उसमें प्रस्तावना के रूप में मौर्य वंशीय राजा गोविन्दराज की वंशावली दी हुई है। निश्चय ही इस शिलालेख में जिस मौर्य कुल की चर्चा है वह चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित शाही मौर्य वंश की एक शाखा है, क्यों कि प्राचीन शाही मौर्य वंश से सम्बद्धित छोटे छोटे मौर्य कुल छठवीं, सातवीं और आठवीं शताब्दि में पश्चिमी घाट और समुद्र के बीच के कोकन नामक प्रदेश में राज्य करते थे। बहुधा उनका प्रसंग कितने ही शिलालेखों में आया है। उक्त शिलालेख में मौर्य वंश की उत्पत्ति सूर्यवंशी राजा मान्धाता से बतायी गयी है। इस शिलालेख का प्रारम्भिक विवरण इस प्रकार है।

...मनुरभूत्तत्सुतात्सूर्यवंशः। विख्यातः सर्वलोकेष्वमलरूपगुणैरन्वितः
कीर्तिधर्म्मैर्म्मान्धातुर्भूमिपालात्सकलगुणनिधेर्म्मौर्यवंशो बभूव ॥ १ ॥
आसीत्कैलासभंगे रुचिर शशि सुधाशुभ्रगंगाप्रवाहे
दिव्यारामोपभोगातुरसुरनिकरोद्गुष्टकाम्यप्रलापे।
सोमः सोमार्द्धभूपः सकलसुरनुतः कामचित्तप्रदोषः
सर्व्वेशो लौकिकानामशुभविहतये सोपवर्ण्णः सुराष्ट्रम् ॥ २ ॥

तत्पश्चात् शिलालेख में मौर्यों की राजधानी वल्लभी नगर का विवरण दिया है, और उसके बाद गोविन्द राज से पूर्व मौर्य वंश में उत्पन्न कुछ राजाओं का।

जैन शिलालेख में, जो १४०२ ए. डी. का है, लिखा है कि नागखण्ड (माईसूर का आधुनिक शिकारपूर ताल्लुक) का

रक्षण, क्षात्र धर्म की साक्षात मूर्ति चन्द्रगुप्त द्वारा हुआ[1]। आगे के एक अध्याय में हम दिखायेंगे कि चन्द्रगुप्त ने स्वयं दक्षिण भारत के एक बड़े भाग पर विजय प्राप्त की थी। हमारे विचार में जिस चन्द्रगुप्त का उक्त शिलालेख में प्रसंग है वह शक्तिशाली चन्द्रगुप्त मौर्य है।

वाघली के शिलालेख के इस कथन के, कि मौर्य वंश की उत्पत्ति सूर्यवंशीय मान्धाता से हुई, आधार पर हम बौद्धों की इस दन्त-कथा को कि मौर्य भी उसी वंश परम्परा से थे जिससे स्वयं बुद्ध भगवान थे और भी प्रमाणित मानते हैं। अनेक बौद्ध ग्रन्थों, जैसे कि महावंश, महावस्तु, ललितविस्तार आदि, के अनुसार बुद्ध भगवान् भी उक्त सूर्यवंश से थे, जिस में बौद्ध दन्तकथाओं के ही अनुसार मान्धाता, इक्ष्वाकु तथा अन्य शक्तिशाली सूर्यवंशी नरेश थे। इनमें से अनेकों के नाम पौराणिक सूर्यवंशी राजाओं की वंश सूची में भी मिलते हैं। पौराणिक दन्तकथाओं के अनुसार भी बुद्ध भगवान् की वंश परम्परा सूर्य-वंश से सम्बद्ध है। विष्णु पुराण के अनुसार इस वंश का बृहदबल कुरुक्षेत्र के युद्ध में मारा गया था। इक्ष्वाकु के कुल के राजाओं की तूलिका में वृहदबल की वंश परम्परा में शाक्य, उनके पुत्र शुद्धोदन, और उनके पुत्र रातुल (अर्थात राहुल) हैं[2]। बौद्ध और पौराणिक सूचियों में पूर्णरूपेण साम्य नहीं है, परन्तु दोनों में अनेक महत्वपूर्ण राजाओं के एक ही नाम दिये हैं।

---

(१) चन्द्रगुप्तेन सुक्षात्रधर्म गेहेन धीमता।
(२) विष्णु पुराण. ४२२.

मध्यकालीन हैं, परन्तु इनसे उक्त बौद्ध कथन के समर्थन के लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण पुष्ट प्रमाण प्राप्त होते हैं। बाघाली का शिला लेख १०६९ ऐ० डी० का है। उसमें प्रस्तावना के रूप में मौर्य वंशीय राजा गोविन्दराज की वंशावली दी हुई है। निश्चय ही इस शिलालेख में जिस मौर्य कुल की चर्चा है वह चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित शाही मौर्य वंश की एक शाखा है, क्यों कि प्राचीन शाही मौर्य वंश से सम्बद्धित छोटे छोटे मौर्य कुल छटवीं, सातवीं और आठवीं शताब्दि में पश्चिमी घाट और समुद्र के बीच के कोकन नामक प्रदेश में राज्य करते थे। बहुधा उनका प्रसंग कितने ही शिलालेखों में आया है। उक्त शिलालेख में मौर्य वंश की उत्पत्ति सूर्यवंशी राजा मान्धाता से बतायी गयी है। इस शिलालेख का प्रारम्भिक विवरण इस प्रकार है।

...मनुरभूत्तत्सुतात्सूर्यवंशः। विख्यातः सर्वलोकेष्वमलनृपगुणैरन्वितः,
कीर्तिधर्म्मैर्म्मान्धातुर्भूमिपालात्सकलगुणनिधिर्म्मौर्यवंशी बभूव ॥ १ ॥
आसीत्कैलासशृंगे रुचिर शशि सुधाशुभ्रगंगाप्रवाहे
दिव्यारामोपभोगात्सुरसुरनिकरोद्घुष्टकाम्यप्रलापे।
सोमः सोमार्द्धभूपः सकलसुरनुतः कामचित्तप्रदोपः
सर्व्वेषां लौकिकानामशुभविहतये सोवतीर्णः सुराष्ट्रम् ॥ २ ॥

तत्पश्चात् शिलालेख में मौर्यों की राजधानी वल्लभी नगर का विवरण दिया है, और उसके बाद गोविन्द राज से पूर्व मौर्य वंश में उत्पन्न कुछ राजाओं का।

जैन शिलालेख में, जो १४०२ ए. डी. का है, लिखा है कि नागखण्ड (माईसूर का आधुनिक शिकारपूर तालुक) का

रक्षण, क्षात्र धर्म की साक्षात मूर्ति चन्द्रगुप्त द्वारा हुआ[1]। आगे के एक अध्याय में हम दिखायेंगे कि चन्द्रगुप्त ने स्वय दक्षिण भारत के एक बड़े भाग पर विजय प्राप्त की थी। हमारे विचार में जिस चन्द्रगुप्त का उक्त शिलालेख मे प्रसग है वह शक्तिशाली चन्द्रगुप्त मौर्य है।

बावली के शिलालेख के इस कथन के, कि मौर्य वंश की उत्पत्ति सूर्यवशीय मान्धाता से हुई, आधार पर हम बौद्धो की इस दन्त-कथा को कि मौर्य भी उसी वश परम्परा से थे जिससे, स्वयं बुद्ध भगवान थे और भी प्रमाणित मानते हैं। अनेक बौद्ध ग्रन्थो, जैसे कि महावश, महावस्तु, ललितविस्तार आदि, के अनुसार बुद्ध भगवान् भी उक्त सूर्यवंश से थे, जिस में बौद्ध दन्तकथाओ के ही अनुसार मान्धाता, इक्ष्वाकु तथा अन्य शक्तिशाली सूर्यवशी नरेश थे। इनमें से अनेको के नाम पौराणिक सूर्यवशी राजाओ की वंश सूची में भी मिलते है। पौराणिक दन्तकथाओ के अनुसार भी बुद्ध भगवान् की वश परम्परा सूर्य-वश से सम्बद्ध है। विष्णु पुराण के अनुसार इस वंश का बृहद्बल कुरुक्षेत्र के युद्ध में मारा गया था। इक्ष्वाकु के कुल के राजाओ की तूलिका में बृहद्बल की वंश परम्परा में शाक्य, उनके पुत्र शुद्धोदन, और उनके पुत्र रातुल (अर्थात राहुल) हैं[2]। बौद्ध और पौराणिक सूचियो में पूर्णरूपेण साम्य नहीं है, परन्तु दोनो में अनेक महत्वपूर्ण राजाओ के एक ही नाम दिये हैं।

(१) चन्द्रगुप्तेन सुक्षात्रधर्म गेहेन धीमता।
(२) विष्णु पुराण ४२२.

चन्द्रगुप्त और मौर्य कुल इक्ष्वाकु और मान्धाता के वंश से थे, इस तथ्य से कतिपय पुराणों के महत्वपूर्ण निम्न लिखित आवृत् प्रकरण पर अच्छा प्रकाश पड़ेगा।

यदैव भगवद्विष्णोरंशो यातो दिवं द्विज ।
वसुदेवकुलोद्भूतस्तदैव कलिरागतः ॥ ३५ ॥
प्रयास्यन्ति यदा चैते पूर्वाषाढां महर्षयः ।
तदा नन्दात्प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ॥ ३९ ॥
शतानि तानि दिव्यानि सप्त पञ्च च संख्यया ।
निःशेषेण ततस्तस्मिन्भविष्यति पुनः कृतम् ॥ ४२ ॥
देवापिः पौरवो राजा मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः ।
महायोगबलोपेतौ कलापग्रामसंश्रयौ ॥ ४५ ॥
कृते युग इहागत्य क्षत्रप्रावर्तकौ हि तौ ।
भविष्यतो मनोर्वंशे बीजभूतौ व्यवस्थितौ ॥ ४६ ॥[3]

---

(३) विष्णु पुराण ४-२४ । उक्त कथन की तुलना भागवत पुराण के निम्न प्रकरण से करो ।

विष्णोर्भगवतो भानुः कृष्णाख्योऽसौ दिवं गतः ।
तदाऽविशत् कलिर्लोकं पापे यद्रमते जनः ॥ २९ ॥
यावत्स पादपद्माभ्यां स्पृशन्नास्ते रमापतिः ।
तावत् कलिर्वै पृथिवीं पराक्रान्तुं न चाशकत् ॥ ३१ ॥
यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि ।
तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः ॥ ३१ ॥
यदा मघाभ्यो यास्यन्ति पूर्वाषाढां महर्षयः ।
तदा नन्दात्प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ॥ ३२ ॥
यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाऽहनि ।
प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः ॥ ३३ ॥

उक्त प्रकरण से ज्ञात होता है कि कलियुग के पश्चात् पुरु वंश के नरेश देवापि और इक्ष्वाकु वंश के नरेश मरु ने पुनः क्षत्रिय राज्य स्थापित कर नवीन कृतयुग की नींव डाली। कलियुग का प्रारम्भ महाभारत के समय में हुआ, और नन्दों के प्रारम्भ काल में उसका प्रभाव बहुत बढ़ गया था, और उन्हीं के साथ उसका अन्त हुआ।

दिव्याब्दाना सहस्रान्ते चतुर्थे तु पुन कृतम्।
भविष्यति यदा नृणा मन आत्मप्रकाशकम्॥ ३४॥
इलेष मानवो वंशो यथा संख्यायते भुवि।
तथा विट्शूद्रविप्राणां तात्ता ज्ञेया युगे युगे॥ ३५॥
एतेषां नामलिङ्गाना पुरुषाणां महात्मनाम्।
कथामात्रविशिष्टानां कीर्तिरेव स्थिता भुवि॥ ३६॥
देवापि· शंतनोर्भ्राता मरुश्चेक्ष्वाकुवंशज।
कलापग्राम आसाते महायोगबलान्वितौ॥ ३७॥
ताविहेत्य कलेरन्ते वासुदेवानुशिक्षितौ।
वर्णाश्रमयुतं धर्मं पूर्ववत् प्रथयिष्यत॥ ३८॥ १२. २

वायु पुराण में भी निम्नप्रकार लिखा है

देवापि पौरवो राजा इक्ष्वाकोश्चैव यो मरु।
महायोगबलोपेत कलापग्राममास्थित। ४३७॥
सुवर्चाः सोमपुत्रस्तु इक्ष्वाकोस्तु भविष्यति।
एतौ क्षत्रप्रणेतारौ चतुर्विंशे चतुर्युगे॥ ४३८॥
क्षीणे कलियुगे तस्मिन्भविष्ये तु कृते युगे।
... ... ॥ ४४१॥ अ. ९९

वायु पुराण के ३२, ३८, मत्स्य पुराण के २७३, ५२, ब्रह्माण्ड पुराण के ३, ७४, २५० के छन्दों को भी देखो।

यह मानकर कि एक युग बहुत ही लम्बे समय का परिमाण होता है प्राचीन पौराणिक कथाओं में एक बहुत ही भ्रामक धारणा उत्पन्न हो गयी है। कौटल्य के अर्थशास्त्र में युग को पांच वर्ष का समय माना है।

द्वयमन सवत्सर । पञ्च संवत्सरो युगमिति ।

अगर हम यह स्वीकार करलें कि पुराणों के काल की गणना युग अर्थात पांच वर्ष के समय को परिमाण मान कर की गयी है, तो प्राचीन पौराणिक कथाओं से बहुत ही समीचीन वंश सूची प्राप्त होगी। सम्भवत चतुर युग (चार बार पाच वर्ष) या बीस वर्ष की एक पीढ़ी मानी गयी हो, और यह समय विशेष कर एक राजा के शासन काल का औसत समय लगाया गया हो। आगे चल कर ऐसा ज्ञात होता है कि ऐतिहासिक काल भी चार भागों में विभक्त किया गया था, और प्रत्येक निर्धारित काल को भी युग कहा गया। भारत के प्राचीन विद्वानो की प्रवृत्ति चार विभाग करने की ओर विशेष कर थी, जैसा कि उन के चार वेद, चार आश्रम, चार जातियों, और चार युगों से प्रतीत होता हो।

चारों ऐतिहासिक युगों का आदि और अन्त किसी न किसी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना से हुआ है। यह इतिहास का एक साधारण तथ्य है कि बडे बडे युद्धों, विजयो या राजनैतिक परिवर्तनों द्वारा ही एक युग का अन्त और नवीन युग का प्रवेश होता है, इस प्रकार स्वाभाविकरूप से हम अनुमान कर सकते

हैं कि प्राचीन भारतीय इतिहास में भी इसके अनुरूप परिवर्तन हुए जो काल प्रवर्तक समझे गये होंगे। भारतीय परम्पराओं से भी ऐसा संकेत मिलता है। असंदिग्धरूप से द्वापर युग के अन्त में भारत का प्रसिद्ध युद्ध हुआ। क्योकि यह स्वीकृत हो चुका है कि यह युद्ध द्वापर और कलियुग के सन्ध्या काल में हुआ था। कालान्तर में इस धारणा में परिवर्तन हुआ और कलियुग का आरम्भ भारत युद्ध के प्रमुख योधाओं, कृष्ण और पाण्डवों, के निधन के पश्चात् निश्चित किया गया। इसका कारण केवल यही था कि प्राचीन लेखक इस अनुपयुक्त विचार को स्थान देना नहीं चाहते थे कि उनके आदर्श भगवान् श्री कृष्ण का जीवन काल कलियुग में भी रहा हो। इस प्रकार इस धारणा के अनुसार कलियुग का प्रारम्भ उन की मृत्यु के ठीक पश्चात् ही हुआ। परन्तु वास्तविक बात स्पष्ट है कि द्वापर युग का अन्त महाभारत युद्ध के साथ हुआ और कलियुग का प्रारम्भ उस समय उत्तरीय भारत में उत्पन्न राजनैतिक परिवर्तन के साथ हुआ।

प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक दन्तकथाओं के अनुसार कलियुग एक सीमाबद्ध ऐतिहासिक काल प्रतीत होता है। नन्दों के समय में यह अपनी पराकाष्ठा को पहुँचा। इसके पश्चात् देवापि पौरव और मरु इक्ष्वाकु ने नवीन कृतयुग का शिलारोपण किया। इस में तनक भी सन्देह नहीं हो सकता कि पौराणिक परम्परा में जिन नन्दों की चर्चा है, वे मगध के अधिपति नन्द ही हैं। पौराणिक दन्तकथाओं से यह अभिव्यक्त होता है कि

नन्दों का पतन महाभारत के युद्ध के १२०० वर्ष पश्चात् हुआ। लगभग सभी पुराणों के अनुसार कलियुग का भी समय महाभारत के युद्ध से १२०० वर्ष पश्चात् तक का है। इसके अतिरिक्त पौराणिक दन्तकथाओं में मगध के नन्द राजाओं के प्रति बहुत ही घृणास्पद भाव व्यक्त किये गये हैं, और महापद्म नन्द के प्रति तो विशेषकर। वह शूद्र और परशुराम की तरह क्षत्रिय जाति का संहारक समझा जाता है। मत्स्य पुराण में महापद्म नन्द को कलि का अवतार तक कहा है।

> महानन्दिसुतश्चापि शूद्रायां कलिकांशजः।
> उत्पत्स्यते महापद्मः सर्वक्षत्रान्तकोऽनृपः॥ १२॥
>
> अध्याय २७२

इस प्रकार यह स्वीकार करना असंगत न होगा कि प्राचीन पौराणिक दन्तकथाओं से यह प्रतीत होता है कि कलियुग का अन्त मगध के नन्दों के मूलोच्छेदन के साथ हुआ। बाद की पौराणिक परम्परा में कलियुग का विस्तार अपरिमित हो गया। ऐसा केवल बहुत बाद के अप्रिय और अब्राह्मणीय वंशों को भी कलियुग में सम्मिलित करने के लिये किया गया है। यदि देवापि पौरव और मरु इक्ष्वाकु के बारे में उक्त प्राचीन पौराणिक दन्तकथाओं का कथन सत्य है तो हम यह मानने के लिये विवश हो जाते हैं कि यह लोग मगध के नन्द राजाओं के उन्मूलन वाले समय में थे। सम्भवतः इस अब्राह्मणीय साम्राज्य के मूलोच्छेदन में भी इनका हाथ रहा हो। इस में तनक सन्देह नहीं कि

नन्दों का उन्मूलन चन्द्रगुप्त मौर्य ही ने किया। हमने ऊपर चन्द्रगुप्त तथा मौर्य वंश के सूर्यवंशी और इक्ष्वाकु के वंशज होने के प्रमाण दिये हैं। हमने पिछले एक अध्याय में यह भी सिद्ध किया है कि मुद्राराक्षस नाटक के अनुसार नन्दों का मूलोच्छेदन करने में चन्द्रगुप्त का सहायक पर्वतक अथवा ग्रीक ऐतिहासिकों का पोरस ही था। पोरस उसका व्यक्तिगत नाम न था, प्रत्युत एक उपाधि मात्र थी, जिससे पौरवों के अधिपति का अभिप्राय है। इन सब बातों से हम यह नतीजा निकालते हैं कि नन्दों का उन्मूलन करके कलियुग का अन्त और एक नये कृतयुग की स्थापना करने वाले देवापि पौरव और इक्ष्वाकु मरु, चन्द्रगुप्त मौर्य और पोरस ही हैं। पुरु को ही ग्रीक इतिहासकारों ने पोरस कहा है और मुद्राराक्षस नाटक का पर्वतक व पर्वतेश्वर भी यही व्यक्ति है। मरु मौर्य का चिन्ह रूप है, और देवापि सम्भवतः पोरस का व्यक्तिगत नाम रहा हो।

यह सुगमता से अनुमान किया जा सकता है कि प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक कथाओं में चन्द्रगुप्त मौर्य एक बहुत ही असाधारण व्यक्ति समझा जाता था। उसने केवल मगध के लोक निन्दित राजा नन्द का मूलोच्छेदन ही नहीं किया वरन् यवनों से भी देश को बचाया और सफलता पूर्वक एक बड़ा साम्राज्य स्थापित किया जो प्राचीन संसार के बड़े साम्राज्यों में से एक था। मुद्राराक्षस के रचयिता ने उसे विष्णु का अवतार तक कहा है। यदि प्राचीन पौराणिक दन्तकथाओं

में, जैसा कि हमने ऊपर प्रमाणित किया है, उसे एक नवीन कृतयुग का संस्थापक कहा है तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। उक्त पौराणिक परम्परा के आलोक में हम इस बौद्ध परम्परा को कि चन्द्रगुप्त का नन्दों से कोई सम्बन्ध न था और वह किसी सूर्यवंशी क्षत्रिय कुल से था और भी प्रमाणित मान सकते हैं।

अध्याय ८

चन्द्रगुप्त की गान्धार उत्पत्ति।

हमने पिछले दो अध्यायों में यह बताया है कि चन्द्रगुप्त नन्दवंशीय नहीं था, वरन् वह किसी सूर्यवंशी राजकुल का था। अब हम यहा उन प्रमाणों को उपस्थित करते हैं जिनके कारण हम मौर्य वंश और चन्द्रगुप्त की उत्पत्ति मगध से न मानकर पश्चिमोत्तर भारत अथवा गान्धार से मानते हैं।

मुद्राराक्षस नाटक के अन्तिम अक में जब चन्द्रगुप्त की राक्षस से भेंट कराई जाती है तो राक्षस का व्यवहार इस प्रकार का है जैसेकि उसने प्रथम बार ही इस युवक मौर्य सम्राट् को देखा हो।

राक्षस — (विलोक्यात्मगतम्) सत्य अये अय चन्द्रगुप्त
(अक ७)

अगर चन्द्रगुप्त मगध का निवासी था तो राक्षस उस से परिचित होता। इस दशा में राक्षस द्वारा उक्त भावो की अभिव्यक्ति असंगत होती। वह चन्द्रगुप्त को देखकर इतना आश्चर्यान्वित क्यों होता।

राजतरंगिणी के अनुसार अशोक शकुनी का वंशज था।

प्रपौत्र शकुनेस्तस्य भूपते प्रपितृव्यज ।
अथावहदशोकाख्य सत्यसधो वसुधराम् ॥ १०१ ॥

शकुनी महाभारत महाकाव्य का एक प्रमुख व्यक्ति है। वह गान्धार देश का राजकुमार, और दुर्योधन की माता गान्धारी का भाई था। कुछ पौरा-णिक परम्परा के अनुसार शकुनी इक्ष्वाकु-वंश, जिसमें स्वयं चन्द्रगुप्त और अशोक भी थे, से सम्बद्ध था, और वह उत्तरापथ का अधिकारी था।

बौद्ध दन्तकथाओं का अवलोकन करने से भी यह ज्ञात होता है कि उनके अनुसार भी चन्द्रगुप्त और मौर्य मगध के निवासी न थे। महावंश टीका से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्यनगर के राजा की विवाहिता रानी का पुत्र था। महावंश टीका का निम्न विवरण चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित वंश की मौर्य उपाधि का परिचायक है। "बुद्ध भगवान् के जीवन काल में विधुवब राजा के युद्ध से विपत्यापन्न भागे हुए शाक वंश के कुछ व्यक्तियों ने हिमवन्त में जा कर शरण ली। वहां उन्हें साल तथा अन्य वृक्षों के वन के मध्य में स्थित और जल से युक्त एक रमणीय स्थान मिला। वहीं पर निवास स्थान बनाने की इच्छा से बड़े बड़े मार्गों की सन्धि पर उन्हों ने एक नगर बसाया। उसके चारों ओर एक अभेद्य प्राचीर की व्यवस्था की, जिसमें अनेक रक्षा द्वार भी बने थे। उन्हों ने उसे मनोहर प्रासादों और उद्यानों से सुशोभित किया। इसके अतिरिक्त नगर में एक ऐसे भवनों की पंक्ति थी, जिनकी छतों की खपरैलों को मयूर के परों की तरह लगाया गया था। वह स्थान सदा ही क्रौंचों तथा मयूरों के कलरव से गुंजित रहता था, इसी कारण इस नगर को उक्त नाम से अभिहित किया गया और इस नगर के शाक स्वामी और उनकी सन्तान

मौर्य उपाधि से समस्त जम्बूद्वीप में प्रसिद्ध हुई। इसी समय से वह वंश मौर्य वंश कहलाया"।

हुवानश्वांग ने भी शकों की उक्त विपत्ति सम्बन्धि घटना का तथा कुछ शकों के भागने और हिमवंत के किसी स्थान में एक राज्य स्थापित करने का विवरण दिया है। हुवानश्वांग ने स्थानीय दन्तकथाओं का ही अधिक अनुसरण किया है। उनके अनुसार इन शकों ने स्वात नदी पर अवस्थित सुन्दर उद्यान प्रदेश के किसी स्थान को अपना निवास बनाया। जैसा कि उसने उल्लेख किया है, "इस प्रदेश के बीचों—बीच एक पर्वत श्रेणी थी। उसके शिखर पर एक नाग के आकार का जलाशय था उसकी निर्मल जलराशि उज्ज्वल दर्पण के समान थी, और उसकी स्वच्छ लहरें बड़े उन्माद के साथ सदा ही अठखेलियां करती रहती थीं। प्राचीन समय में विरुधक राजाने अपनी सेना ले शकों पर आक्रमण किया। शक जाति के चार व्यक्तियों ने उसका सामना किया। जिसके फल स्वरूप उन्हें देश से निकाल दिया। वे चारों भिन्न भिन्न दिशाओं में भागे। राजधानी से भागा हुआ उनमें से एक व्यक्ति बहुत थकित हो विश्राम लेने के लिये मार्ग के बीच में बैठ गया। यहां से उसे एक हंस उद्यान के उक्त जलाशय के किनारे अपनी पीठ पर बैठा कर ले गया। उस व्यक्ति ने वहां के नागराज की पुत्री से अपना विवाह किया और नागराज की सहायता से उसने उद्यान के राजा का वध कर उसके राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया"।

हुयानच्वांग का निम्नलिखित विवरण महापरिनिर्वाण सूत्र के इस विवरण का अन्य रूप सा प्रतीत होता है कि मौर्यों ने बुद्ध भगवान् के अवशेषो के लेने के लिये विलम्ब से अपने स्वत्व की घोषणा की। " उस युवक (जिसने विरुधक राजा के आक्रमण के कारण भाग कर उद्यान राज्य की स्थापना की) की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र उत्तरसेन के अधिकार प्राप्त करते ही उसकी माता ज्योति विहीन हो गयी। बुद्ध भगवान् नाग अपालल को विजय कर लौटते समय आकाश से नीचे आये और इसी स्थान पर उतरे। उस समय उत्तरसेन शिकार खेलने गया हुआ था। बुद्ध भगवान् ने उसकी माता को उपदेश दिया, तत्पश्चात् उन्होंने पूछा कि " तुम्हारा पुत्र कहां है ? वह मेरा वंशज है "। उत्तरसेन की माता ने कहा कि " वह थोड़े समय के लिये आखेट को गया है, और वह शीघ्र वापिस आता होगा। कृपाकर आप थोड़े समय रुकिये "। बुद्ध भगवान् ने कहा, " तुम्हारा पुत्र मेरा वंशज है। उसे तो विश्वास करने और समझ लेने के लिये केवल सत्य को सुन लेना ही पर्याप्त होगा। यदि वह मेरा सम्बन्धी न होता तो मैं अवश्य उसे उपदेश देने के लिये रुकता, परन्तु अब मैं जा रहा हू। उसके लौटने पर उससे कहना कि मैं यहां से कुशीनगर जा रहा हूं। वहां दो साल के वृक्षों के मध्य में अपनी देह त्यागने वाला हू। तुम्हारे पुत्र को वहां पहुंचकर मेरे अवशेषों का उपयुक्त सम्मान करने के लिये एक भाग लेना चाहिये "।

उत्तरसेन के लौटने पर उसकी माताने उसको बुद्ध भगवान् का सन्देश सुनाया। राजा उसको सुनकर वेदनापूर्ण स्वर में चीत्कार कर उठा, और मुर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। जब उसे होश आया तो उसने अपने अनुचरों को एकत्रित कर उन युग्म वृक्षों की ओर प्रस्थान किया, जहाँ बुद्ध भगवान् अन्तगति को प्राप्त हो चुके थे। वहां अन्य देशों के नरेशों ने उसके साथ बहुत ही घृणित व्यवहार किया। वे उन अति अमूल्य अवशेषों में से, जिन्हें वे अपने साथ ले जा रहे थे, उसको भाग देना नहीं चाहते थे। देवयोग से उसे कुछ अवशेष मिल गये। वह उन्हें अपने देश ले आया और वहां उसने उनके ऊपर एक स्तूप का निर्माण कराया[1]। जब हम हुवानच्वांग द्वारा लिखित उधान तथा शकों के वहां आबाद होने की उक्त दन्तकथाओं की तुलना मौर्य सम्बन्धी सीलोन में प्रचलित दन्तकथाओं, जिनका ज़िक्र हम ऊपर कर आये हैं, से करते है तो हमें इसमें सन्देह नहीं रहता कि हुवानच्वांग ने भी उक्त विवरण में मौर्यों की उत्पत्ति सम्बन्धी दन्तकथाओं का ज़िक्र किया है। ये दोनों पूर्णरूपेण स्वतन्त्र दन्तकथाएं हैं।

स्वयं चन्द्रगुप्त के लिये प्राचीन योरोपीय ऐतिहासिकों ने जो उल्लेख किया है उस से भी इस निर्णय की पुष्टि होती है कि चन्द्रगुप्त गान्धार देश का निवासी था। लगभग १२३ ए. डी. के एरियन नामी एक रोमन इतिहासकार ने स्पष्ट-

(१) हुवानच्वांग की उक्त कथाएं हमने Beal's Buddhist Records of the Western World नाम की पुस्तक से ली हैं।

रूप से चन्द्रगुप्त को सिन्ध नदी के आस पास रहने वाले भारतियों का अधिपति कहा है।

इस में तो कोई सन्देह नहीं कि एलेक्ज़ेन्डर के आक्रमण के समय चन्द्रगुप्त पश्चिमोत्तर भारत में था। प्लूटार्क ने लिखा है कि चन्द्रगुप्त एलेक्ज़ेन्डर से मिला था। जस्टिन ने भी उसके एलेक्ज़ेन्डर से मिलने की बात लिखी है। जस्टिन के अनुसार, स्पष्टरूप से चन्द्रगुप्त का एलेक्ज़ेन्डर से पर्याप्त साहचर्य था, क्योंकि जब उसने अपने व्यवहार से एलेक्ज़ेडर को रुष्ट कर दिया, तो उसने चन्द्रगुप्त को मार डालने की आज्ञा दी पर वह भाग गया। जस्टिन के इस प्रकरण में कुछ आधुनिक योरोपीय विद्वानों ने कल्पना के आधार पर एलेक्ज़ेन्डर के स्थान पर नन्द पाठ बना लिया है। फिर तो इस संशोधन ने इस सिधान्त को जन्म दे ही दिया कि चन्द्रगुप्त मगध से भागा हुआ एक व्यक्ति था। परन्तु जस्टिन के पाठ को ध्यानपूर्वक पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उक्त संशोधन नितान्त असंगत है। यह बहुत ही खेद-पूर्ण बात है कि इस संशोधन को नोट के रूप में न लिखकर कितने ही आधुनिक इतिहासकारों ने अपनी पुस्तकों के असली पाठ में कर दिया है। हमें बड़े खेद के साथ लिखना पड़ता है कि प्राचीन पुस्तकों में ऐसे काल्पनिक संशोधनों ने बड़ा अनर्थ किया है, और ऐतिहासिक सत्य की खोज और भी कठिन करदी है।

अगर चन्द्रगुप्त मगध का निवासी था तो वह एलेक्ज़ेन्डर के आक्रमण के समय पश्चिमोत्तर भारत में कैसे पहुंचा? उक्त

कथित जस्टिन की पुस्तक के पाठ का काल्पनिक संशोधन कर आधुनिक इतिहासवेताओं ने चन्द्रगुप्त के मगध से निर्वासित हो पंजाब की ओर भागने की गाथा पर एक असत्य प्रमाण ढूंढ ही तो निकाला, और एक नितान्त असंगत कहानी भी गढ़ डाली। विचारिये,मगध से निर्वासित, मुशकिल से बीस वर्ष की आयु के एक युवक ने सिन्ध नद के पश्चिम में निवास करने वाली समस्त जातियों पर थोड़े से समय के अन्दर ही विजय प्राप्त करली। इन जातियों ने एक एक इंच के लिये एलेक्ज़ेन्डर से युद्ध किया। एलेक्ज़ेन्डर के निरन्तर नौ महीने युद्ध करने पर भी वह उन को पराभूत न कर सका। इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता कि सिन्ध नद के पश्चिम प्रदेश की समस्त शक्तिशाली और स्वतन्त्रता-प्रिय जातियों ने एलेक्ज़ेन्डर के भारत से जाते ही एक निर्वासित और अपरिचित व्यक्ति के हाथ में अपने को समर्पित कर दिया। अगर इतिहास को उपयुक्तरूप से अभिव्यक्त किया जाय तो ज्ञात होगा कि उन्हों ने अपने में से ही एक शक्तिशाली व्यक्ति को यह समर्पण किया, और चन्द्रगुप्त उन्हीं में से एक था। यह कहना पर्याप्त न होगा कि जिस प्रकार आजकल पश्चिमोत्तर भारत वहशी और लड़ाकू जातियों से आबाद है, उस समय भी वैसाही था। रीज़ डेविड और कुछ अन्य विद्वानों का यह कथन ठीक नहीं है कि चन्द्रगुप्त "सीमा प्रदेश में एक डाकुओं के सरदार की स्थिति से बढ़कर उस समय का सब से शक्तिशाली सम्राट् बन गया"।

रूप से चन्द्रगुप्त को सिन्ध नदी के आस पास रहने वाले भारतियों का अधिपति कहा है।

इस में तो कोई सन्देह नहीं कि एलेक्ज़ेन्डर के आक्रमण के समय चन्द्रगुप्त पश्चिमोत्तर भारत में था। प्लुटार्क ने लिखा है कि चन्द्रगुप्त एलेक्ज़ेन्डर से मिला था। जस्टिन ने भी उसके एलेक्ज़ेन्डर से मिलने की बात लिखी है। जस्टिन के अनुसार, स्पष्टरूप से चन्द्रगुप्त का एलेक्ज़ेन्डर से पर्याप्त साहचर्य था, क्योंकि जब उसने अपने व्यवहार से एलेक्ज़ेन्डर को रुष्ट कर दिया, तो उसने चन्द्रगुप्त को मार डालने की आज्ञा दी पर वह भाग गया। जस्टिन के इस प्रकरण में कुछ आधुनिक योरोपीय विद्वानों ने कल्पना के आधार पर एलेक्ज़ेन्डर के स्थान पर नन्द पाठ बना लिया है। फिर तो इस संशोधन ने इस सिधान्त को जन्म दे ही दिया कि चन्द्रगुप्त मगध से भागा हुआ एक व्यक्ति था। परन्तु जस्टिन के पाठ को ध्यानपूर्वक पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उक्त संशोधन नितान्त असंगत है। यह बहुत ही खेद-पूर्ण बात है कि इस संशोधन को नोट के रूप में न लिखकर कितने ही आधुनिक इतिहासकारों ने अपनी पुस्तकों के असली पाठ में कर दिया है। हमें बड़े खेद के साथ लिखना पड़ता है कि प्राचीन पुस्तकों में ऐसे काल्पनिक संशोधनों ने बड़ा अनर्थ किया है, और ऐतिहासिक सत्य की खोज और भी कठिन करदी है।

अगर चन्द्रगुप्त मगध का निवासी था तो वह एलेक्ज़ेन्डर के आक्रमण के समय पश्चिमोत्तर भारत में कैसे पहुंचा? उक्त

कथित जस्टिन की पुस्तक के पाठ का काल्पनिक संशोधन कर आधुनिक इतिहासवेत्ताओं ने चन्द्रगुप्त के मगध से निर्वासित हो पंजाब की ओर भागने की गाथा पर एक असत्य प्रमाण ढूंढ ही तो निकाला, और एक नितान्त असंगत कहानी भी गढ़ डाली। विचारिये, मगध से निर्वासित, मुशकिल से बीस वर्ष की आयु के एक युवक ने सिन्ध नद के पश्चिम में निवास करने वाली समस्त जातियों पर थोड़े से समय के अन्दर ही विजय प्राप्त करली। इन जातियों ने एक एक इंच के लिये एलेक्ज़ेन्डर से युद्ध किया। एलेक्ज़ेन्डर के निरन्तर नौ महीने युद्ध करने पर भी वह उन को पराभूत न कर सका। इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता कि सिन्ध नद के पश्चिम प्रदेश की समस्त शक्तिशाली और स्वतन्त्रता-प्रिय जातियों ने एलेक्ज़ेन्डर के भारत से जाते ही एक निर्वासित और अपरिचित व्यक्ति के हाथ में अपने को समर्पित कर दिया। अगर इतिहास को उपयुक्तरूप से अभिव्यक्त किया जाय तो ज्ञात होगा कि उन्हों ने अपने में से ही एक शक्तिशाली व्यक्ति को यह समर्पण किया, और चन्द्रगुप्त उन्हीं में से एक था। यह कहना पर्याप्त न होगा कि जिस प्रकार आजकल पश्चिमोत्तर भारत वहशी और लड़ाकू जातियों से आबाद है, उस समय भी वैसाही था। रीज़ डेविड और कुछ अन्य विद्वानों का यह कथन ठीक नहीं है कि चन्द्रगुप्त "सीमा प्रदेश में एक डाकुओं के सरदार की स्थिति से बढ़कर उस समय का सब से शक्तिशाली सम्राट् बन गया"।

चन्द्रगुप्त को 'डाकुओं का सरदार' और उसके दल को 'डाकुओं के दल' के रूप मे अभिव्यक्त करना एक बहुत बड़ा ऐतिहासिक असत्य है। इस असत्य के उद्रेक का केवल यही कारण है कि जस्टिन ने चन्द्रगुप्त के दल के लिये "लेट्रोनिबस" (Latronibus) शब्द प्रयुक्त किया है। यह शब्द लेटिन भाषा में कई अर्थों में प्रयुक्त होता है, जैसे कि वेतनिक सैनिक, सामन्त, शरीर रक्षक, लुटेरे आदि। आधुनिक इतिहासवेताओं ने उक्त शब्द का अन्तिम अर्थ लेकर बड़ी गलती की है। कितने असंगत रूप से जस्टिन के पाठ को अनुवाद किया है कि "चन्द्रगुप्त ने डाकुओं के दल को एकत्र कर तात्कालीन शासन के उन्मूलन के लिये भारतियों को उकसाया"[२]। परन्तु यहां "वेतनिक सेना एकत्रित कर" केवल अधिक उपयुक्त ही नहीं ठहरता, प्रत्युत भारतीय तथा युनानी परम्परा के नितान्त अनुरूप भी है। प्लुटार्क और अन्य योरोपीय ऐतिहासिकों के लेखों से चन्द्रगुप्त के पास एक बहुत बड़ी स्थायी सेना होने का प्रमाण मिलता है, और वस्तुतः इतनी बड़ी विजय प्राप्त करने के लिये पर्याप्त स्थायी सेना होना आवश्यक भी था। जिस परम्परा का मुद्राराक्षस में निरन्तर विचार रखा गया है उससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रगुप्त की अधिकांश

ऊपर के अध्यायो में इस बात की चर्चा की है कि मगध के नन्द अधिपति के उन्मूलन करने में चन्द्रगुप्त का सहायक शक्तिशाली पोरस था, जो मुद्राराक्षस का पर्वतक है। मुद्राराक्षस के अनुसार मगध पर आक्रमण के समय चन्द्रगुप्त के साथ यवन, पारसीक, वाल्हीक, और कम्बोज सेनाएं भी थीं। यह प्राचीन समय की ख्यातनामा और सभ्य जातियां थीं। हम आगे के एक अध्याय मे उक्त तथा अशोक के शिलालेखो में व्यक्त अन्य जातियां कौन और कहां स्थित थीं, इस बात पर प्रकाश डालेंगे।

मौर्य समय की घटनाओं की उपयुक्त अभिव्यक्ति के लिये चन्द्रगुप्त तथा उसके दल के डाकू होने की असत्य गाथा पर इतिहास का निर्माण नहीं करना चाहिये, और हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उन प्राचीन शताब्दियो में भारत का पश्चिमोत्तर सीमा प्रदेश आर्य सभ्यता का सब से बड़ा केन्द्र था। पाणिनि के समान विद्वान् इस प्रदेश में उत्पन्न हुऐ। तक्षशिला के समान विद्या का केन्द्र भी इस प्रदेश मे था, जहां सुदूर देशो से विद्यार्थी पढ़ने के लिये आते थे। यहा की आजकल की दशा का प्रादुर्भाव शताब्दियो से चले आने वाले जातीय और धार्मिक मत भेद और घोर समामो के कारण हुआ है।

चन्द्रगुप्त भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश का निवासी था, इस तथ्य के आलोक में यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि एलेकजन्डर के भारत से जाते ही किस प्रकार चन्द्रगुप्त ने पंजाब और उसके परे के पश्चिम प्रदेशों से युनानी सत्ता को पूर्णरूपेण नष्ट कर दिया। वस्तुत अभी एलेक्जेन्डर ने भारत की सीमा को

छोड़ा भी न था कि उसके द्वारा नियुक्त अधिकांश क्षत्रप, सिन्ध नद के पश्चिमी प्रदेश का निकेनौर, पंजाब का राज-वंशीय फिलिप्स, और गिडरोसिया का एपेलोफेनीज़, मार डाले गये।

केवल चन्द्रगुप्त के पश्चिमोत्तर प्रदेश के निवासी होने पर ही यह बात भी पूरी तौर से समझ में आती है कि किस प्रकार अबसे *दो हज़ार वर्ष पूर्व इस मौर्य सम्राट् ने भारत की उस समस्त पश्चिमी* सीमा पर अपना अधिकार जमाया, जिसको अंग्रेज़ी साम्राज्य आज तक हसरत भरी निगाहों से देखता है, और जिसे सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दियों में मुग़ल सम्राट् भी अपने राज्य में सम्मिलित न कर सके थे। चन्द्रगुप्त के साम्राज्य की पश्चिम सीमा का विस्तार बहुत ही कम आंका जाता है। जैसा कि हम आगे चलकर बतायेंगे कि पूर्व परशिया तथा चीनी और रूसी तुर्किस्तान सहित मध्य एशिया का बहुत कुछ भाग उसके साम्राज्य में सम्मिलित था, और कई पीढ़ीयों तक इन प्रान्तों पर मौर्यवंश का सुरक्षित अधिकार रहा।

मौर्यवंश और चन्द्रगुप्त का मूल निवास-स्थान पश्चिमोत्तर भारत अथवा गान्धार और विशेषकर बौद्ध साहित्य का उद्यान था, हम उक्त निर्णय के आलोक में अधिक उपयुक्तरूप से चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित वंश की मौर्य उपाधि का निरूपण कर सकते हैं। कुनार और सिन्ध नदियों के मध्यवर्ती प्रदेश के बीचोंबीच तीन शृंगों से युक्त एक शिलाखंड अवस्थित है। जिसको प्राचीन समय में और आज तक भी कोहे (पर्वत) मोर कहते

हैं। क्योंकि चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित वंश का मूल स्थान यह प्रदेश था सम्भवतः इसी कारण इस वंश ने मौर्य उपाधि धारण की।

कौटल्य ने अर्थशास्त्र (अधिकरण ३, अध्याय ४) में गान्धार को कलंकित करने वाले लोगों को दण्ड देने के लिये जो व्यग्रता प्रदर्शित की है उससे भी यह स्पष्ट होता है कि गान्धार ही चन्द्रगुप्त का जन्म प्रान्त था। भारत के अन्य भागों के समान मगध देश को भी चन्द्रगुप्त ने बाद में जीता, और सम्भवतः उसने पाटलीपुत्र को अपनी राजधानी इस कारण बनाया क्योंकि वह पहिले ही से एक बड़े साम्राज्य का केन्द्र था, और वहां से वह सुगमता पूर्वक सारे भारत का सम्राट् बन सकता था।

परिशिष्ट

पाली भाषा की उत्पत्ति।

पाली भाषा चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक की अध्यक्षता में प्रसारित बौद्ध धर्म से बहुत ही निकटरूप में सम्बद्धित है। चन्द्रगुप्त एवं मौर्य वंश के पश्चिमोत्तर प्रदेश के निवासी होने से पाली के विकाश पर भी एक नवीन प्रकाश पड़ता है। प्राचीन भारतीय भाषाओं के विद्वानों का प्रायः यह मत है कि पाली मिश्रित भाषाओं का रूप है, और पश्चिम भारत की प्राकृतिक भाषाओं

छोडा भी न था कि उसके द्वारा नियुक्त अधिकांश क्षत्रप, सिन्ध नद के पश्चिमी प्रदेश का निकेनौर, पजाब का राज-वशीय फ़िलिप्स, और गिडरोसिया का एपेलोफेनीज, मार डाले गये।

केवल चन्द्रगुप्त के पश्चिमोत्तर प्रदेश के निवासी होने पर ही यह बात भी पूरी तौर से समझ में आती है कि किस प्रकार अबसे दो हजार वर्ष पूर्व इस मौर्य सम्राट् ने भारत की उस समस्त पश्चिमी सीमा पर अपना अधिकार जमाया, जिसको अंग्रेजी साम्राज्य आज तक हसरत भरी निगाहों से देखता है, और जिसे सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दियों में मुगल सम्राट् भी अपने राज्य में सम्मिलित न कर सके थे। चन्द्रगुप्त के साम्राज्य की पश्चिम सीमा का विस्तार बहुत ही कम आका जाता है। जैसा कि हम आगे चलकर बतावेंगे कि पूर्व परशिया तथा चीनी और रूसी तुर्किस्तान सहित मध्य एशिया का बहुत कुछ भाग उसके साम्राज्य में सम्मिलित था, और कई पीढ़ीयों तक इन प्रान्तो पर मौर्यवश का सुरक्षित अधिकार रहा।

मौर्यवश और चन्द्रगुप्त का मूल निवास-स्थान पश्चिमोत्तर भारत अथवा गान्धार और विशेषकर बौद्ध साहित्य का उद्यान था, हम उक्त निर्णय के आलोक में अधिक उपयुक्तरूप से चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित वश की मौर्य उपाधि का निरूपण कर सकते है। कुनार और सिन्ध नदियो के मध्यवर्ती प्रदेश के *बीचोंबीच तीन श्रृंगों से युक्त एक शिलाखड* अवस्थित है। जिसको प्राचीन समय में और आज तक भी कोहे (पर्वत) मोर कहते

हैं। क्योंकि चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित वंश का मूल स्थान यह प्रदेश था सम्भवत. इसी कारण इस वश ने मौर्य उपाधि धारण की।

कौटल्य ने अर्थशास्त्र (अधिकरण ३, अध्याय ४) में गान्धार को कलंकित करने वाले लोगो को दण्ड देने के लिये जो व्यग्रता प्रदर्शित की है उससे भी यह स्पष्ट होता है कि गान्धार ही चन्द्रगुप्त का जन्म प्रान्त था। भारत के अन्य भागो के समान मगध देश को भी चन्द्रगुप्त ने बाद में जीता, और सम्भवतः उसने पाटलीपुत्र को अपनी राजधानी इस कारण बनाया क्योंकि वह पहिले ही से एक बड़े साम्राज्य का केन्द्र था, और वहां से वह सुगमता पूर्वक सारे भारत का सम्राट् बन सकता था।

परिशिष्ट

पाली भाषा की उत्पत्ति।

पाली भाषा चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक की अध्यक्षता में प्रसारित बौद्ध धर्म से बहुत ही निकटरूप में सम्बद्धित है। चन्द्रगुप्त एव मौर्य वंश के पश्चिमोत्तर प्रदेश के निवासी होने से पाली के विकाश पर भी एक नवीन प्रकाश पड़ता है। प्राचीन भारतीय भाषाओं के विद्वानों का प्रायः यह मत है कि पाली मिश्रित भाषाओं का रूप है, और पश्चिम भारत की प्राकृतिक ;

छोड़ा भी न था कि उसके द्वारा नियुक्त अधिकांश क्षत्रप, सिन्ध नद के पश्चिमी प्रदेश का निकेनोर, पंजाब का राज-वंशीय फ़िलिप्स, और गिडरोसिया का एपेलोफेनीज़, मार डाले गये।

केवल चन्द्रगुप्त के पश्चिमोत्तर प्रदेश के निवासी होने पर ही यह बात भी पूरी तौर से समझ में आती है कि किस प्रकार अबसे दो हज़ार वर्ष पूर्व इस मौर्य सम्राट् ने भारत की उस समस्त पश्चिमी सीमा पर अपना अधिकार जमाया, जिसको अंग्रेज़ी साम्राज्य आज तक हसरत भरी निगाहों से देखता है, और जिसे सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दियों में मुग़ल सम्राट् भी अपने राज्य में सम्मिलित न कर सके थे। चन्द्रगुप्त के साम्राज्य की पश्चिम सीमा का विस्तार बहुत ही कम आंका जाता है। जैसा कि हम आगे चलकर बतायेंगे कि पूर्व एशिया तथा चीनी और रूसी तुर्किस्तान सहित मध्य एशिया का बहुत कुछ भाग उसके साम्राज्य में सम्मिलित था, और कई पीढ़ियों तक इन प्रान्तों पर मौर्यवंश का सुरक्षित अधिकार रहा।

मौर्यवंश और चन्द्रगुप्त का मूल निवास-स्थान पश्चिमोत्तर भारत अथवा गान्धार और विशेषकर बौद्ध साहित्य का उद्यान था, हम उक्त निर्णय के आलोक में अधिक उपयुक्तरूप से चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित वंश की मौर्य उपाधि का निरूपण कर सकते हैं। कुनार और सिन्ध नदियों के मध्यवर्ती प्रदेश के बीचोंबीच तीन शृगों से युक्त एक शिलाखंड अवस्थित है। जिसको प्राचीन समय में और आज तक भी कोहे (पर्वत) मोर कहते

हैं। क्योंकि चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित वंश का मूल स्थान यह प्रदेश था सम्भवतः इसी कारण इस वंश ने मौर्य उपाधि धारण की।

कौटल्य ने अर्थशास्त्र (अधिकरण ३, अध्याय ४) में गान्धार को कलंकित करने वाले लोगों को दण्ड देने के लिये जो व्यग्रता प्रदर्शित की है उससे भी यह स्पष्ट होता है कि गान्धार ही चन्द्रगुप्त का जन्म प्रान्त था। भारत के अन्य भागों के समान मगध देश को भी चन्द्रगुप्त ने बाद में जीता, और सम्भवतः उसने पाटलीपुत्र को अपनी राजधानी इस कारण बनाया क्योंकि वह पहिले ही से एक बड़े साम्राज्य का केन्द्र था, और वहां से वह सुगमता पूर्वक सारे भारत का सम्राट् बन सकता था।

छोड़ा भी न था कि उसके द्वारा नियुक्त अधिकांश क्षत्रप, सिन्ध नद के पश्चिमी प्रदेश का निकेनौर, पंजाब का राज-वंशीय फ़िलिप्स, और गिड्रोसिया का एपेलोफ़ेनीज़, मार डाले गये।

केवल चन्द्रगुप्त के पश्चिमोत्तर प्रदेश के निवासी होने पर ही यह बात भी पूरी तौर से समझ में आती है कि किस प्रकार अबसे दो हज़ार वर्ष पूर्व इस मौर्य सम्राट् ने भारत की उस समस्त पश्चिमी सीमा पर अपना अधिकार जमाया, जिसको अंग्रेज़ी साम्राज्य आज तक हसरत भरी निगाहों से देखता है, और जिसे सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दियों में मुग़ल सम्राट् भी अपने राज्य में सम्मिलित न कर सके थे। चन्द्रगुप्त के साम्राज्य की पश्चिम सीमा का विस्तार बहुत ही कम आंका जाता है। जैसा कि हम आगे चलकर बतावेंगे कि पूर्व परशिया तथा चीनी और रूसी तुर्किस्तान सहित मध्य एशिया का बहुत कुछ भाग उसके साम्राज्य में सम्मिलित था, और कई पीढ़ीयों तक इन प्रान्तों पर मौर्यवंश का सुरक्षित अधिकार रहा।

मौर्यवंश और चन्द्रगुप्त का मूल निवास-स्थान पश्चिमोत्तर भारत अथवा गान्धार और विशेषकर बौद्ध साहित्य का उद्यान था, हम उक्त निर्णय के आलोक में अधिक उपयुक्तरूप से चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित वंश की मौर्य उपाधि का निरूपण कर सकते हैं। कुनार और सिन्ध नदियों के मध्यवर्ती प्रदेश के बीचोंबीच तीन शृंगों से युक्त एक शिलाखंड अवस्थित है। जिसको प्राचीन समय में और आज तक भी कोहे (पर्वत) मोर कहते

हैं। क्योंकि चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित वंश का मूल स्थान यह प्रदेश था सम्भवत. इसी कारण इस वश ने मौर्य उपाधि धारण की।

कौटल्य ने अर्थशास्त्र (अधिकरण ३, अध्याय ४) में गान्धार को कलंकित करने वाले लोगों को दण्ड देने के लिये जो व्यग्रता प्रदर्शित की है उससे भी यह स्पष्ट होता है कि गान्धार ही चन्द्रगुप्त का जन्म प्रान्त था। भारत के अन्य भागों के समान मगध देश को भी चन्द्रगुप्त ने बाद में जीता, और सम्भवतः उसने पाटलीपुत्र को अपनी राजधानी इस कारण बनाया क्योंकि वह पहिले ही से एक बडे साम्राज्य का केन्द्र था, और वहां से वह सुगमता पूर्वक सारे भारत का सम्राट् बन सकता था।

परिशिष्ट

पाली भाषा की उत्पत्ति।

पाली भाषा चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक की अध्यक्षता में प्रसारित बौद्ध धर्म से बहुत ही निकटरूप में सम्बद्धित है। चन्द्रगुप्त एव मौर्य वश के पश्चिमोत्तर प्रदेश के निवासी होने से पाली के विकाश पर भी एक नवीन प्रकाश पड़ता है। प्राचीन भारतीय भाषाओं के विद्वानों का प्रायः यह मत है कि पाली मिश्रित भाषाओं का रूप है, और पश्चिम भारत की प्राकृतिक भाषाओं

का उस पर असंदिग्धरूप से बहुत प्रभाव पड़ा है। जैसा कि सर बेरिडेल कीथ ने कहा है कि " पाली को भारत की पूर्वीय भाषाओं की अपेक्षा पश्चिमी भाषाओं से सम्बद्धित करने के लिये अधिक पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। अतः हम विश्वस्तरूप से इस मत को स्वीकार करते हैं कि पाली का मूल स्थान पूर्वीय भारत न होकर पश्चिम भारत है। यदि ठीक ठीक देखा जाय तो उक्त भाषा की न तो मागधी और न अर्ध मागधी आधारभूत है "[१]। ग्रियर्सन और कोनो ने भी यही मत प्रकट किया है। इस के अतिरिक्त उनके अनुसार पैशाची और पाली में बहुत निकट का सम्बन्ध है।

ग्रियर्सन ने बहुत ही पुष्ट आधार पर भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश को पैशाची का मूल स्थान माना है। उन्होंने लिखा है कि " भारत वर्ष के पश्चिमोत्तर में एक समय एक जाति या जातियों का दल रहता था, जिन्हें पूर्व में निवास करने वाली जातियां पिशाच नाम से अभिहित करती थीं। जो भाषा ये बोलते थे उसको प्राकृत के वैयाकरणों ने पैशाची प्राकृत कहा है। उस प्राकृत के चिन्ह आज भी पर्याप्त संख्या में पश्चिमोत्तर प्रान्त की भाषाओं में वर्तमान हैं। इस के अतिरिक्त मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि सम्भवतः यह पिशाच सिन्ध नद के किनारे किनारे होते हुए राजपूताना और कोकन के तट तक फैल गये। मेरा यह भी दृढ़ विश्वास है कि भारतवर्ष में उनका निवास केन्द्र, जहां से वे फैले, पश्चिमोत्तर प्रदेश था "[२]।

(१) Indian Historical Quarterly, Vol. I. पृ.५१४.
(२) R. G. Bhandarkar Commemoration Volume. पृष्ठ १२०

ग्रियर्सन ने अपने पाली सम्बन्धी मत का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार दिया है—

"(१) साहित्यिक पाली मिश्रित भाषा है, जिसकी मागधी आधारभूत है।

(२) उसका पैशाची प्राकृत से बहुत ही निकट का सम्बन्ध है।

(३) असली पैशाची प्राकृत भारतवर्ष के नितान्त पश्चिमोत्तर में अवस्थित केकय व गांधार में बोली जाती थी, और वास्तव में वह इस प्रदेश की स्थानीय भाषा थी"[३]।

ग्रियर्सन ने पाली पर पैशाची के प्रभाव का निम्न विवेचन दिया है, "बहुत ही प्राचीन समय से केकय व गांधार अपनी विद्याओं के लिये प्रख्यात था। जब हम इस असंदिग्ध तथ्य पर विचार करते हैं कि पैशाची प्राकृत तक्षशिला के पार्श्ववर्ती प्रदेश की भाषा थी, और पाली से भी उसका निकट का सम्बन्ध था, तो हम इस निर्णय पर पहुचते हैं कि साहित्यिक पाली मागधी भाषा का साहित्यिक रूप थी, और तक्षशिला विद्यापीठ के पठन–पाठन की माध्यम भी यही थी"[४]।

ग्रियर्सन के अनुमान का कि उन प्राचीन शताब्दियों में तक्षशिला विद्यापीठ में पाली में, जो मागधी का साहित्यिक रूप थी,

---

(३) R G Bhandarkar Commemoration Volume पृष्ठ ११२
ग्रियर्सन के अनुसार केकय भारत के नितान्त पश्चिमोत्तर में स्थित है, और केकय में गन्धार का वह भाग भी सम्मिलित था जो सिन्ध नद के पूर्व में है।

(४) R G Bhandarkar Commemoration Volume पृष्ठ ११

शिक्षा दी जाती थी कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसके विपरीत यह स्वीकार करने के लिये अधिक पुष्ट प्रमाण मिलते हैं कि संस्कृत ही वहां की शिक्षा की माध्यम थी।

मौर्य वंश का मूल स्थान पश्चिमोत्तर प्रदेश था, इस दृष्टि से पाली भाषा के विकाश पर हम निम्न विचार उपस्थित करते हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में प्रथम बार समस्त उत्तर भारत पर एक शासन स्थापित हुआ। इससे एक ऐसी मिश्रित भाषा के विकास की ओर प्रबल प्रवृत्ति उत्पन्न हुई जिसे पूर्व तथा पश्चिम भारत के निवासी भली प्रकार समझ सकें। यह नव विकसित राष्ट्रभाषा पश्चिमोत्तर प्रदेश की भाषा से प्रचुर मात्रा में प्रभावित हुई, क्योंकि जैसा हम ऊपर बता आये हैं स्वयं चन्द्रगुप्त और उसकी सेनाएं जिनकी सहायता से उसने मगध पर विजय प्राप्त की पश्चिमोत्तर प्रदेश से आये थे। अशोक के शासन काल में उक्त मिश्रित भाषा पाली सम्भवतः समस्त देश में भले प्रकार समझी जाने लगी होगी। कई शताब्दियों बाद बहुत कुछ इनके ही अनुरूप राजनैतिक पर-स्थितियों में उर्दू का ऐसा ही भाषा सम्बन्धी सम्मिश्रण और विकाश हुआ। इसी ही मिश्रित भाषा या पाली में अशोक के समय में उसके पुत्र और पुत्री द्वारा बुद्ध भगवान् के उपदेश सीलोन ले जाये गये। इस प्रकार पाली भाषा, जिसमें लिखे आज तक भी कितने ही प्राचीन बौद्ध ग्रन्थ हमको सीलोन में मिलते हैं, हमारे इस निष्कर्ष को समर्थन करती है कि मौर्यवंश और चन्द्रगुप्त का मूल स्थान पश्चिमोत्तर भारत था।

अध्याय ९

चन्द्रगुप्त और शशिगुप्त एक ही व्यक्ति थे।

हम पिछले अध्यायों में यह बता आये हैं कि चन्द्रगुप्त न तो नन्द वंश से था और न मगध ही उसका मूल स्थान था, वास्तव में उसकी उत्पत्ती पश्चिमोत्तर भारत या अधिक स्पष्ट-रूप से कुनार, स्वात और सिंध नदियों के मध्यवर्ती प्रदेश से थी। हमारे उक्त निष्कर्ष से इस प्रश्न का उद्रेक होता है कि क्या चन्द्रगुप्त और शशिगुप्त एक ही व्यक्ति थे। शशिगुप्त और चन्द्रगुप्त नाम परस्पर पर्यायवाची हैं, यह सम्भव हो सकता है कि मौर्य वंश के महान संस्थापक का जन्म–नाम शशिगुप्त रहा हो, और सिंहासन पर अधिकार करने पर उसने चन्द्रगुप्त नाम धारण कर लिया हो। स्ट्रैबो के निम्न लेख से ज्ञात होता है कि "राजा का जन्म–नाम तथा नगर सम्बन्धी उपाधि के अतिरिक्त चन्द्रगुप्त भी नाम था"। इससे मालूम होता है कि चन्द्रगुप्त का जन्म–नाम कुछ और था। सम्भवतः यह शशिगुप्त रहा हो। सिंहासन पर बैठने के समय जन्म–नाम का कुछ परिवर्तन करने की प्रथा बहुधा सब ही समय और स्थानों पर पाई जाती है।

शशिगुप्त के सम्बन्ध में प्राचीन युनानी ऐतिहासिकों ने जो कु थोड़ा बहुत लिखा है उससे ज्ञान होता है कि वह सिन्ध नद

पश्चिम प्रदेश का एक असाधारण व्यक्ति था। हम एक पिछले अध्याय में बता आये हैं कि शशिगुप्त ने एलेक्ज़ेन्डर के आक्रमण के समय में भी एक महत्वपूर्ण भाग लिया था। वह पहिले तो एलेक्ज़ेन्डर के विरुद्ध अपनी सेना सहित परशिया के निवासियों की सहायता करने बैक्ट्रीया गया, परन्तु जब वे इस अन्तिम युद्ध में भी पराजित हुए तो वह एलेक्ज़ेन्डर से जा मिला। हिन्दूकुश तथा सिन्ध नद के मध्यवर्ती प्रदेश में एलेक्ज़ेन्डर को वहां की क्षत्रिय जातियों का बहुत ज़बरदस्त विरोध सहन करना पड़ा। उन्होंने उसका अन्तिम मुक़ाबिला आरनस पर किया। यह विशेषरूप से दृढ़ शिलाखण्डों से निर्मित गढ़ था, जो पश्चिमोत्तर से भारत में आने वाले मार्ग का नियंत्रण करता था। एलेक्ज़ेन्डर ने युद्ध की दृष्टी से इस अति उपयोगी स्थान पर अधिकार कर शशिगुप्त के संरक्षण में उसे रख दिया। इसके पश्चात् उसने सिन्ध नद को पार किया। एरियन ने शशिगुप्त को अश्वकों का क्षत्रप कहा है।

एलेक्ज़ेन्डर बहुधा विजित प्रदेश को स्वयं वहां के जीते हुये शासक या उसी स्थान के किसी अन्य प्रभावशाली व्यक्ति के आधीन कर देता था। स्पष्टरूप से यही एक नीति थी जिसके द्वारा एलेक्ज़ेन्डर नितान्त अपरिचित जातियों से सहायता प्राप्त कर सकता था। यदि हम उसकी इस नीति पर ध्यान रखें तो हम बड़ी सरलता से यह स्वीकार कर सकते हैं कि शशिगुप्त सिन्ध नद के पश्चिम में उस प्रदेश के शासक वंश से था, जिसके कि मसाका और आरनस आदि मुख्य केन्द्र थे। इस प्रकार शशिगुप्त और चन्द्रगुप्त दोनों पर

ध्यानपूर्वक विचार करने से यह ज्ञात होता है कि वे दोनों ही सिन्ध नद के पश्चिमी प्रदेश के निवासी थे।

शशिगुप्त और चन्द्रगुप्त दोनों के व्यक्तित्वों का विकास भी एकसा ही मालूम होता है। शशिगुप्त हमारे सन्मुख बहुत ही उत्साही और अवसर-उपयोगी व्यक्ति के रूप में उपस्थित होता है। पहिले तो उसने परशिया के निवासियों का पक्ष गृहण किया, परन्तु जब उनकी पराजय हुई तो वह एलेक्ज़ेन्डर से जा मिला। और बाद में जब भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश में अश्वक एलेक्ज़ेन्डर के पीठ पीछे उसके पाश्विक अत्याचारों का प्रतिशोध लेने के लिये भीषण दृढ़ता के साथ उसके विरुद्ध खड़े हुए तो शशिगुप्त उन विद्रोहियों का नेता बन बैठा। जैसा कि हम पिछले एक अध्याय में बता आये हैं, इस विद्रोह का दमन कभी न हो सका और इस ही के कारण एलेक्ज़ेन्डर को सहसा व्यास के तट से लौटना पड़ा, और उसको सिन्ध तथा मकरान के मार्ग से अपनी जान बचाकर भागना पड़ा। चन्द्रगुप्त के भी उत्साही होने में सन्देह नहीं। एक महान् विजेता के नाते उसकी स्थिति भी सदा ही समयानुकूल रही होगी। कौटल्य ने दूसरे राजाओं के जीतने के लिये जिन कौशलों के प्रयोग का अपने अर्थशास्त्र में उल्लेख किया है उन पर दृष्टिपात करने से हमें उन सब युक्तियों का पता चल जाता है जिनकी सहायता से चन्द्रगुप्त ने इतने बड़े साम्राज्य को प्राप्त किया। उनसे हमारे इस विचार की पुष्टि होती है कि वह भी शशिगुप्त के समान एक बहुत बड़ा अवसर-उपयोगी था।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रगुप्त और शशिगुप्त इन दोनों के केवल नाम ही परस्पर पर्यायवाची नहीं, प्रत्युत जहां

तक हमें पता चलता है दोनों के व्यक्तित्वों का विकास भी समान रूप से हुआ प्रतीत होता है। दोनों ही एक ही समय में विद्यमान थे, और दोनों ने ही एलेक्जेन्डर के आक्रमण के समय में महत्वपूर्ण काम किये। इस प्रकार जब हम इन सब बातों की समानता पर विचार करते हैं तो हमको मालूम होता है कि चन्द्रगुप्त और शशिगुप्त एक ही व्यक्ति थे।

अध्याय १०

उत्तर भारत पर चन्द्रगुप्त की विजय।

हमारा यह निष्कर्ष कि चन्द्रगुप्त का मूल निवास-स्थान पश्चिमोत्तर भारत था और वह और शशिगुप्त एक ही व्यक्ति थे उस समय के इतिहास की बहुत सी जटिल समस्याओं को हल कर देता है। अब हम प्राचीन योरोपीय ऐतिहासिकों के इस कथन की सत्यता का पूर्णरूप से अनुभव करते हैं कि चन्द्रगुप्त की एलेक्ज़ेन्डर से भेंट हुई। यह भी अब स्पष्ट हो जाता है, जैसा कि जस्टिन ने लिखा है, कि एलेक्ज़ेन्डर चन्द्रगुप्त से क्यों इतना रुष्ट हो गया था कि उसने उसके सिर काटने तक की आज्ञा दी। एक समय वह एलेक्ज़ेन्डर का मित्र था और अब उसने उस विद्रोह का नेतृत्व अपने हाथ में लिया जिसने एलेक्ज़ेन्डर की सारी आकांक्षाओं का अन्त कर दिया। जैसा कि हमने ऊपर के एक अध्याय में बताया है सिन्ध नद के पश्चिमी ओर इस सफल विद्रोह के कारण ही एलेक्ज़ेन्डर को व्यास नदी से लौट जाना पड़ा। लौटते समय जब तक वह पोरस के राज्य में उसकी छत्र छाया में रहा वह सुरक्षित था, परन्तु जैसे ही उसने पोरस के राज्य की सीमा को छोड़ा उस पर खूब मार पड़ी, और उसकी सेना की रीति-नीति बिलकुल नष्ट हो गयी। अनेक बार उसे अपने सैनिकों को उत्साहित

करने के लिये अपने प्राणों को भी संकट में डालना पड़ा। यह अनुमान किया जा सकता है कि पश्चिमोत्तर प्रदेश से प्रसारित चन्द्रगुप्त के प्रभाव से दक्षिण पंजाब और समस्त सिंध भी प्रभावान्वित हो चुका था। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः दक्षिण सिन्ध में एलेक्जेन्डर के विरुद्ध स्वयं चन्द्रगुप्त सेना का संचालन कर रहा था। यह सम्भवत: मौरि (मौर्य ?)राजा था,जिसके बारे मे कुछ प्राचीन योरोपीय ऐतिहासकों ने यह कहा है कि वह पाताल राज्य(दक्षिण सिंध) में एक ही समय राज्य करने वाले दो राजाओं में से एक था[1]। दो राजाओं के साथ साथ एक ही प्रदेश में राज्य करने की प्रथा भारत में कभी प्रचलित न थी। वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतापशाली मौर्य स्थानीय राजा की एलेक्ज़ेन्डर के विरुद्ध सहायता कर रहा था। पश्चिमोत्तर भारत के अनेक स्थानों के समान यहां पर भी जगह जगह नगर ख़ाली करा दिये गये थे। एलेक्ज़ेन्डर की सेना के लिये साधारण रसद मिलना भी कठिन हो गया था। एलेक्ज़ेन्डर पर इधर-उधर से आक्रमण हुए। सिन्ध में एलेक्ज़ेन्डर के लिये रुकना असम्भव हो गया और उसे अपने जीवन को बचाने के लिये मकरान के रेतीले मार्ग से होकर भागना पड़ा, जहां उसकी अधिकांश सेना नष्ट हो गयी। नावों और बल्लियों का बेड़ा, जो पंजाब की नदियों में भी चलने के अयोग्य था, फ़ौरन ही प्रतिकूल वायु में समुद्र यात्रा के लिये रवाना करना पड़ा। इस बेड़े की भी वही शोचनीय दशा हुई जो रेगिस्तान के मार्ग से भागने वाली सेना की। एलेक्ज़ेन्डर पर असाधारण युवावस्था में चन्द्रगुप्त की

(१) Cambridge History of India Vol. I. पृ. ३७५

इस असामान्य विजय ने उसे समस्त पश्चिमोत्तर भारत, मध्य एशिया और पूर्वीय परशिया की सारी जातियों का पराक्रमी नायक बना दिया।

इस प्रकार जो विशाल साम्राज्य चाणक्य और चन्द्रगुप्त के विज्ञ कौशल का फल था उसके निर्माण का प्रारम्भ पश्चिमोत्तर भारत से हुआ। चन्द्रगुप्त एलेक्ज़ेन्डर के आक्रमण के समय में ही उस प्रदेश में एक प्रमुख व्यक्ति के रूप में हमारे सामने आता है। उसने एलेक्ज़ेन्डर को भारतवर्ष से बाहर खदेड़ निकाला, और इसके शीघ्र ही पश्चात् अवशिष्ट युनानी अधिकारियों का भी उसने अन्त कर दिया। इस प्रकार एलेक्ज़ेन्डर के वहां से लौटते ही भारत का सारा पश्चिमोत्तर प्रदेश चन्द्रगुप्त के अधिकार में आगया। हम मुद्राराक्षस में सुरक्षित इस ऐतिहासिक परम्परा का उल्लेख कर ही आये हैं कि चन्द्रगुप्त की सारी सेना पश्चिमोत्तर भारत और मध्य एशिया की थी। इस के साथ ही मगध के नन्द अधिपति के मूलोच्छेदन में उसका सहायक शक्तिशाली पोरस था।

भारत तथा युनानी दन्तकथाओं में मगध के अधिपति नन्द के अप्रिय और दुर्विनीत होने का स्पष्ट उल्लेख है। इस दशा में चन्द्रगुप्त और चाणक्य द्वारा उसका मूलोच्छेदन अधिक कठिन कार्य न था, विशेषकर जबकि उन्होंने अपनी शक्ति का सगठन भारत के पश्चिमोत्तर प्रान्तों में पहिले ही से कर लिया था। यदि मुद्राराक्षस में ऐतिहासिक सत्य सुरक्षित है तो नन्द के प्रसिद्ध मन्त्री राक्षस का चन्द्रगुप्त के साथ मेल होजाने के बाद हाल में

ही स्थापित मौर्य साम्राज्य के प्रति पूर्वीय भारत में जो कुछ विमुखता थी वह पूर्णरूपेण दब गयी। चन्द्रगुप्त का उसके मगध को जीतते ही लगभग सारे उत्तरीय भारत पर अखन्ड साम्राज्य फैल गया, क्योंकि करीब करीब उसही समय शक्तिशाली पोरस का भी वध हो गया था। नन्दों और पोरस के विनाश होने पर उत्तरीय भारत में अब कोई ऐसा राज्य न रह गया था जो शक्तिशाली मौर्य सम्राट् का सामना कर सके।

अध्याय ११

दक्षिण भारत पर चन्द्रगुप्त की विजय।

अशोक के शिलालेखों से यह स्पष्ट है कि विंध्या के दक्षिण की ओर देश का एक बहुत बड़ा भाग भी मौर्य साम्राज्य में सम्मिलित था। यह भी असंदिग्ध है कि चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक ने उसको नहीं जीता था। तब दक्षिण भारत को किसने विजय किया, स्वय चन्द्रगुप्त ने या उसके पुत्र बिंदुसार ने। विन्सेंट स्मिथ ने उपयुक्त ही लिखा है कि "चन्द्गुप्त के चरित्र की निश्चित रूपरेखा बहुत अद्भुत है और उससे उसकी असाधारण योग्यता का भी पता चलता है, यह सम्भव है कि दक्षिण के विजय का श्रेय भी उसे ही मिलेगा"[1]। यहां संक्षिप्त में हम वह प्रमाण उपस्थित करते हैं जिनसे मालूम होता है कि स्वय चन्द्रगुप्त ने ही दक्षिण भारत पर विजय प्राप्त की थी। प्लुटार्क से हमें ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त ने समस्त भारत पर विजय प्राप्त की। जस्टिन ने भी लिखा है कि सारा भारतवर्ष उसके अधिकार में था। एक प्राचीन तामिल कवि मामुलनार (जिसका समय ईसवीं सम्वत् का प्रारम्भिक काल है) ने बहुधा ही मौर्यों की चर्चा की है और कहा है कि वे एक विशाल

---

(१) Early History of India पृ १४९.

सेना सहित टिनेवली जिले मे पोदिल पाहाड़ी तक पहुचे। इस लेखक के वक्तव्य का समर्थन परम कोरिनार तथा कालिल अतिरप्यनार नामी कवियों ने भी किया है। आक्रमणकारियों ने कोकन से चलकर केनानोर से लगभग पदरह मील उत्तर में एलीमले पहाडियों से गुजरते हुए काँगू (कोयम्बीटूर) जिले में प्रवेश किया, और वे पोदील पहाडी तक गये। दुर्भाग्य से मौर्यों के नेता का नाम अभिव्यक्त नहीं किया गया है, परन्तु उसको 'वम्ब' (अर्थात सहसा उन्नति को प्राप्त) मौर्य कहकर पुकारा है, जिससे ज्ञात होता है कि यहां प्रथम मौर्य अर्थात् चन्द्रगुप्त और उसके साथियों से अभिप्राय है[२]। इसके अतिरिक्त कुछ मैसोर के मध्यकालीन उत्कीर्ण लेखों से भी पता चलता है कि मैसोर में चन्द्रगुप्त का राज्य था। इन में से एक उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि नागखण्ड अथवा शिकारपुर तालुक की रक्षा चन्द्रगुप्त द्वारा हुई।

सीलोन के बौद्ध ग्रन्थ महावंश के निम्न विवरण से भी पता चलता है कि चन्द्रगुप्त ने समस्त भारत पर विजय प्राप्त की थी जिसमें दक्षिण भारत भी अवश्य ही शामिल था।

> मोरियान खत्तियान वस जात सिरीधर।
> चन्द्रगुत्तो ति पञ्ञात चाणक्को ब्राह्मणो ततो॥
> नवम धननन्द त घातेत्वा चण्डकोपसा।
> सकले जम्बुदीपस्मिं रज्जे समभिसिञ्च सो॥ (अक ५)

(२) देखो K Iyengor's Beginning of South Indian History

मुद्राराक्षस नाटक के निम्न लिखित विवरण से भी यह ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त के साम्राज्य का विस्तार दक्षिण सागर तक था।

(१) राजा। (आसनादुत्थाय चाणक्यस्य पादौ गृहीत्वा)।
आर्य चन्द्रगुप्त प्रणमति।

चाणक्य — (पाणौ गृहीत्वा)। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्स।
आ शैलेन्द्राच्छिलान्त स्खलितसुरधुनीशीकरासारशीताद्
आ तीरान्नैकरागस्फुरितमणिरुचो दक्षिणस्यार्णवस्य।
आगत्यागत्य भीतिप्रणतनृपशतैः शश्वदेव क्रियन्ता
चूडारत्नांशुगर्भास्तव चरणयुगस्याङ्गुलीरन्ध्रभागाः ॥ १९ ॥

राजा। आर्यप्रसादादनुभूयत एवैतत्। (अंक ३)

(२) चाणक्य— अम्भोधीनां तमालप्रभवकिसलयश्यामवेलावनानाम्।
आ पारेभ्यश्चतुर्णां चटुलतिमिकुलक्षोभिताऽन्तर्जलानाम्।
मालेवाम्लानपुष्पा तवनृपतिशतैरुह्यते या शिरोभि
सा मय्येव स्खलन्ती प्रथयति विनयालंकृत ते प्रभुत्वम् ॥ २४ ॥
(अंक ३)

इस प्रकार जब हम प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों के, तामिल के प्राचीन साहित्य के, मध्यकालीन कुछ उत्कीर्ण लेखों के, प्राचीन सीलोन के बौद्ध ग्रन्थों के अथवा मुद्राराक्षस के उक्त कथनों की साथ साथ तुलना करते हैं, तो इस में सन्देह नहीं रह जाता कि दक्षिण भारत को भी स्वयं चन्द्रगुप्त ने विजय कर अपने विशाल साम्राज्य में मिलाया था।

अध्याय १२

चन्द्रगुप्त के साम्राज्य के अन्तर्गत मध्य-एशिया के प्रान्त।

चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक के शिलालेखों से यह स्पष्ट है कि पश्चिमोत्तर की ओर मौर्य और सीरिया के सेल्यूकीय साम्राज्यों का विस्तार समवर्ती था। अशोक के दूसरे शिलालेख में उसके साम्राज्य के दक्षिण सीमान्त पर चोड़, पाण्ड्य, सत्यपुत्र और केरलपुत्र के समान ही पश्चिम सीमान्त पर योन राजा अन्त्योक का उल्लेख किया गया है[1]। इस से निसन्देह यह विदित होता है कि पश्चिम की ओर मौर्य साम्राज्य की सीमा पर सेल्यूकस का स्थापित किया हुआ सीरिया का यवन साम्राज्य था। प्रथम मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय में ही इस ओर मौर्य साम्राज्य का यह विस्तार फैल गया था। प्राचीन योरोपीय इतिहासकार स्ट्रैबो से हमें पता चलता है कि "सिन्ध नद भारतवर्ष और ऐरीयाना के मध्य सीमा बनाती थी। ऐरियाना भारत के ठीक

(१) सर्वत विजतम्हि देवानं प्रियस पियदसिनो रात्रो
एवमपि प्रचंतेसु यथा चोडा पाडा सतियपुतो केतलपुतो
आ तंबपंणी अंतियको योनराजा ये वा पि तस अंतीयकस
समीपं राजानो सर्वत्र देवानंप्रियस प्रियदसिनो राजो द्वे
चिकीछ कता।
गिरनार शिलालेख २

पश्चिम में स्थित परशियनों के अधिकार में था। परन्तु बाद में ऐरियाना के बहुत बड़े भाग पर भारतीयों ने अधिकार कर लिया और यह मेसेडोनियनों से उनके हाथ लगा "। स्ट्रेबो से यह भी पता चलता है कि किस प्रकार सिन्ध नद के पश्चिमी किनारे का हिन्दूकुश से लेकर अरब सागर तक लगभग सब ही प्रदेश चन्द्रगुप्त के हाथ पड़ा। उसने लिखा है कि " प्रथम तो इन पर आक्रमण कर एलेक्जेन्डर ने परशियनों के हाथ से इन्हें छीना, उसके पश्चात् उनको चन्द्रगुप्त ने उसके उत्तराधिकारी सेल्यूकस से उनको विजय किया "। काबुल और कन्धार का प्रदेश तो बहुधा ही भारतीय सम्राटों के अधिकार में रहा है, और वैसे भी वह इस देश की प्राकृतिक सीमा के एक भाग का निर्माण करता है। काबुल और कन्धार पर शासन करने वाली शक्ति बड़ी सुविधा से अपने अधिकार में हिरात तक का इलाका रख सकती है। मौर्य साम्राज्य हिरात के आस पास तक फैला था, इसका पता किला-मौर आदि पुराने स्थान-नामों से भी निश्चय होता है। किलामौर कुश नदी पर स्थित हिरात और मर्व के मार्ग पर आज भी एक बहुत ही प्राचीन और महत्त्वपूर्ण स्थान है।

विदित होता है कि मौर्य साम्राज्य और सेल्यूकीय साम्राज्य को हरि-रुद विभाजित करती थी, इसके और आगे पूर्व-उत्तर की ओर सेल्यूकीय तथा मौर्य साम्राज्यों को पृथक करने-वाली हिन्दुकुश की उच्च पर्वत मालाएं अथवा अफगान तुर्किस्तान का पर्वतीय प्रदेश था। यह पहाड़ी प्रदेश तथा इसके परे पामीर की पर्वत मालाएं भी मौर्य साम्राज्य में सम्मिलित थीं, क्योंकि जैसा कि

हम ने नीचे बताया है वहां वे जातियां रहती थीं जो अशोक के शिलालेखों के अनुसार उसी के साम्राज्य में निवास करती थीं, और मुद्राराक्षस के अनुसार भी वहां की जातियों की सहायता से चन्द्रगुप्त ने मगध को जीता था।

पांचवे शिलालेख में अशोक ने योन, कम्बोज और गान्धार आदि जातियों का अपने कुछ पश्चिमी सीमाप्रान्तियों के रूप में उल्लेख किया है। और तेरहवें शिलालेख में बिना किसी सन्देह के लिखा है कि वे उसी के साम्राज्य में निवास करती थीं। यह जातियां ठीक ठीक कहां रहती थीं, इस बात पर हम नीचे अपने कुछ विचार प्रकट करते हैं।

गान्धार—अशोक के शिलालेखों में जिस गान्धार जाति का उल्लेख हुआ है उसकी संस्कृत साहित्य में भी पर्याप्त चर्चा हुई है। गान्धार की सीमा में समय समय पर परिवर्तन होता रहा है। उसके अन्तर्गत सिन्ध नद के ठीक परे पश्चिमोत्तर प्रदेश सदा रहा है। परन्तु समय समय पर सिन्ध नद से पूर्व की ओर के पास का प्रदेश भी गान्धार में सम्मिलित किया गया है।

कम्बोज—कम्बोजों का अभी तक ठीक ठीक पता नहीं लगा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह एक प्राचीन जाति थी। उनकी प्राचीन वैदिक जातियों में गणना है। उनका सब से पहिले नाम पुरातन वैदिक शिक्षकों की सूची में मिलता है। यह सूची सामवेद के वंश ब्राह्मण में दी हुई है। इसके पश्चात् उन

की महत्वपूर्ण चर्चा यास्क मुनि के निरुक्त में हुई है, जिस से ज्ञात होता है कि उनकी बोल-चाल कुछ अंशों में वैदिक भाषा से भिन्न थी। इसके बाद पाणिनी ने कम्बोजों की चर्चा की है। कौटल्य ने भी कम्बोजों को अपने समय की महान् क्षत्रिय जातियों में सम्मिलित किया है। दुर्योधन के मित्र रूप से कम्बोजों ने महाभारत में भी महत्वपूर्ण भाग लिया था।

प्राचीन भारतीय साहित्य की परम्परा से स्पष्ट होता है, कि कम्बोज मध्य-एशिया में ओक्सस प्रदेश के निवासी थे। रघुवंश में कालिदास ने वक्षु (ओक्सस) नदी के तट पर निवास करने वाली पारसीक, यवन आदि जातियों के साथ उन्हें भी स्थान दिया है[2]। इस तथ्य के लिये काश्मीरी कवि कल्हण की राजतरंगणी का प्रमाण बहुत ही महत्वपूर्ण है, उसमें भी काम्बोजों को काश्मीर के उत्तर में रखा

---

(२) पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना।
इन्द्रियाख्यानिव रिपूंस्तत्त्वज्ञानेन संयमी ॥ ६० ॥
यवनीमुखपद्मानां सेहे मधुमदं न सः।
बालातपमिवाब्जानामकालजलदोदयः ॥ ६१ ॥
ततः प्रतस्थे कौबेरीं भास्वानिव रघुर्दिशम्।
शरैरुस्रैरिवोदीच्यानुद्धरिष्यन् रसानिव ॥ ६६ ॥
विनीताध्वश्रमास्तस्य वङ्क्षुतीरविचेष्टनैः।
दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धाल्लग्नकुङ्कुमकेसरान् ॥ ६७ ॥
तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम्।
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम् ॥ ६८ ॥
काम्बोजाः समरे सोढुं तस्य वीर्यमनीश्वराः।
गजालानपरिक्लिष्टैरक्षोटैः सार्धमानताः ॥ ६९ ॥ चतुर्थ भाग

हम ने नीचे बताया है वहां वे जातियां रहती थीं जो अशोक के शिलालेखों के अनुसार उसी के साम्राज्य में निवास करतीं थीं, और मुद्राराक्षस के अनुसार भी वहां की जातियों की सहायता से चन्द्रगुप्त ने मगध को जीता था।

पांचवे शिलालेख में अशोक ने योन, कम्बोज और गान्धार आदि जातियों का अपने कुछ पश्चिमी सीमाप्रान्तियों के रूप में उल्लेख किया है। और तेरहवें शिलालेख में बिना किसी सन्देह के लिखा है कि वे उसी के साम्राज्य में निवास करती थीं। यह जातियां ठीक ठीक कहां रहती थीं, इस बात पर हम नीचे अपने कुछ विचार प्रकट करते हैं।

गान्धार—अशोक के शिलालेखों में जिस गान्धार जाति का उल्लेख हुआ है उसकी संस्कृत साहित्य में भी पर्याप्त चर्चा हुई है। गान्धार की सीमा में समय समय पर परिवर्तन होता रहा है। उसके अन्तर्गत सिन्ध नद के ठीक परे पश्चिमोत्तर प्रदेश सदा रहा है। परन्तु समय समय पर सिन्ध नद से पूर्व की ओर के पास का प्रदेश भी गान्धार में सम्मिलित किया गया है।

कम्बोज—कम्बोजों का अभी तक ठीक ठीक पता नहीं लगा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह एक प्राचीन जाति थी। उनकी प्राचीन वैदिक जातियों में गणना है। उनका सब से पहिले नाम पुरातन वैदिक शिक्षकों की सूची में मिलता है। यह सूची सामवेद के वंश ब्राह्मण में दी हुई है। इसके पश्चात् उन

की महत्वपूर्ण चर्चा यास्क मुनि के निरुक्त में हुई है, जिस से ज्ञात होता है कि उनकी बोल-चाल कुछ अंशो में वैदिक भाषा से भिन्न थी। इसके बाद पाणिनी ने कम्बोजों की चर्चा की है। कौटल्य ने भी कम्बोजों को अपने समय की महान् क्षत्रिय जातियों में सम्मिलित किया है। दुर्योद्धन के मित्र रूप से कम्बोजों ने महाभारत में भी महत्वपूर्ण भाग लिया था।

प्राचीन भारतीय साहित्य की परम्परा से स्पष्ट होता है कि कम्बोज मध्य-एशिया में ओक्सस प्रदेश के निवासी थे। रघुवंश में कालिदास ने वक्षु (ओक्सस) नदी के तट पर निवास करने वाली पारसीक, यवन आदि जातियों के साथ उन्हें भी स्थान दिया है[2]। इस तथ्य के लिये काश्मीरी कवि कल्हण की राजतरंगणी का प्रमाण बहुत ही महत्वपूर्ण है, उसमें भी काम्बोजों को काश्मीर के उत्तर में रखा

(२) पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना ।
इन्द्रियाख्यानिव रिपूंस्तत्त्वज्ञानेन संयमी ॥ ६० ॥
यवनीमुखपद्मानां सेहे मधुमदं न सः ।
बालातपमिवाब्जानामकालजलदोदयः ॥ ६१ ॥
ततः प्रतस्थे कौबेरीं भास्वानिव रघुर्दिशम् ।
शरैरुस्रैरिवोदीच्यानुद्धरिष्यन् रसानिव ॥ ६६ ॥
विनीताध्वश्रमास्तस्य वङ्क्षु-तीरविचेष्टनैः ।
दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धांल्लग्नकुङ्कुमकेसरान् ॥ ६७ ॥
तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम् ।
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम् ॥ ६८ ॥
काम्बोजाः समरे सोढुं तस्य वीर्यमनीश्वराः ।
गजालानपरिक्लिष्टैरक्षोटैः सार्धमानताः ॥ ६९ ॥ चतुर्थ भाग

है[३]। महाभारत में भी वाह्लीक, पारसीक और भारत की अन्य पश्चिमोत्तर प्रदेश की जातियों के साथ ही कम्बोजों का उल्लेख किया गया है[४]। बौद्ध साहित्य में भी कम्बोजों को भारतवर्ष के नितान्त पश्चिमोत्तर में स्थान दिया है।

सम्भवतः ओक्सस और जेक्सरटीज़ नदियों के मध्य के सोगडियाना नाम के पहाड़ी प्रदेश में रहने वाली प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों की कमोई जाति कम्बोज ही हो। जैसा कि प्राचीन इतिहासकार टोलेमी ने लिखा है कि बेक्ट्रीया के ऊपर ओक्सस नदी के आस-पास रहने वाली जातियों में कमोई और कमोराई मुख्य जातियां थीं। और उस पहाड़ी प्रदेश का नाम भी उन्हीं के ऊपर 'कोमेदेस' था।

नाभक और नभपंक्ति। जर्मन विद्वान् बूल्हर का मत ठीक ही है कि अशोक के शिलालेखों का नाभक नभिकपुर ही हो, जिसे ब्रह्म पुराण में हिमालय के उस ओर वाले उत्तर कुरू प्रदेश में स्थान दिया है। अशोक के शिलालेखों में कम्बोजों के साथ नाभक और नभपंक्ति का भी उल्लेख किया गया है। सम्भवतः ये भी कम्बोजों के पास ही में हिन्दुकुश के पहाड़ी प्रदेश में निवास करने वाली जातियां होंगी। यदि यह विचार ठीक है तो सम्भवतः अशोक के शिलालेखों के नाभक हिन्दुकुश (३५·४६ उ. ७०·३ पू.) के नावक दर्रे से सम्बद्ध

(३) ४ तरंग. १६३–१६५.

(४) कृतवर्मा तु सहितः काम्बोजवरबाह्लिकैः।
शिरस्यासीन्नरश्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम्॥ १७॥
भीष्मपर्व ७५.

हों। इस घाटी से हो कर एक प्राचीन महत्वपूर्ण मार्ग पामीर होता हुआ चीनी तुर्किस्तान को जाता था। इस मार्ग की प्राचीनता इस तथ्य से प्रकट हो जाती है कि एलेक्ज़ेन्डर अपने वेक्ट्रीया पर आक्रमण के पश्चात् इसी मार्ग से लौटा था। हुवानच्वाग भी इसी मार्ग द्वारा गाधार से चीनी तुर्किस्तान के काशगर, यारकन्द तथा खोतान नगरों को गया था।

मौर्य साम्राज्य का विस्तार नानक के परे पामीर और सारीकोल के प्रदेशों में भी था, यह तथ्य इस दन्तकथा से भी प्रकाश में आता है कि अशोक ने वहा एक स्तूप का निर्माण कराया था। तश्कुरगान सारीकोल नामक पर्वतीय प्रदेश का प्रमुख और असंदिग्धरूप से बहुत ही प्राचीन स्थान है। सर आरल स्टीन ने यहा अशोक के बनवाये हुए प्राचीन स्तूप का पता लगाया है।

यौन (यवन)। अशोक के शिलालेखो की योन (यवन) जाति भी मध्य–एशिया में निवास करती थी। यह यवन एलेक्ज़ेन्डर के समय से पूर्व आबाद युनानी उपनिवेशों के निवासी थे। अगर एलेक्नेन्डर के समय में ही ग्रीक (यवन) जाति का भारतीयों को सब से पहिले परिचय मिला होता तो वे अवश्य ही यवन (अयोनियन) न कहला अन्य ही किसी नाम से अभिहित किये जाते, क्योंकि जो ग्रीक एलेक्ज़ेन्डर के साथ आये थे वे अयोनियन नहीं थे। इस में कोई सन्देह नहीं कि यवनो और भारतीयों में एलेकजेन्डर से पूर्व ही परस्पर सम्बन्ध स्थापित हो चुका

है[३]। महाभारत में भी वाह्लीक, पारसीक और भारत की अन्य पश्चिमोत्तर प्रदेश की जातियों के साथ ही कम्बोजों का उल्लेख किया गया है[४]। बौद्ध साहित्य में भी कम्बोजों को भारतवर्ष के नितान्त पश्चिमोत्तर में स्थान दिया है।

सम्भवतः ओक्सस और जेक्सरटीज़ नदियों के मध्य के सोगडियान नाम के पहाड़ी प्रदेश में रहने वाली प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों की कमोई जाति कम्बोज ही हो। जैसा कि प्राचीन इतिहासकार टोलेमी ने लिखा है कि वेक्ट्रीया के ऊपर ओक्सस नदी के आस-पास रहने वाली जातियों में कमोई और कमोराई मुख्य जातियां थीं। और उस पहाड़ी प्रदेश का नाम भी उन्हीं के ऊपर 'कोमेदेस', था

नाभक और नभपंक्ति। जर्मन विद्वान् बूल्हर का मत ठीक ही है कि अशोक के शिलालेखों का नाभक नभिकपुर ही हो, जिसे ब्रह्म पुराण में हिमालय के उस ओर वाले उत्तर कुरू प्रदेश में स्थान दिया है। अशोक के शिलालेखों में कम्बोजों के साथ नाभक और नभपंक्ति का भी उल्लेख किया गया है। सम्भवतः ये भी कम्बोजों के पास ही में हिन्दुकुश के पहाड़ी प्रदेश में निवास करने वाली जातियां होंगी। यदि यह विचार ठीक है तो सम्भवतः अशोक के शिलालेखों के नाभक हिन्दुकुश (३५·४६ उ. ७०·३ पू.) के नावक दर्रे से सम्बद्ध

---

(३) ४ तरंग. १६३-१६५.

(४) कृतवर्मा तु सहितः काम्बोजवरवाह्लिकैः ।
शिरस्यासीन्नरश्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ १७ ॥
भीष्मपर्व ७५.

था। पाणिनी उनकी भाषा से परिचत था, और उसने उसको यवनानी नाम से अभिहित किया है।

अशोक के शिलालेखो के योन सम्भवतः उन यवन कैदियों के वंशज थे, जिनके उपनिवेश बैक्ट्रीया के पर्वतीय प्रदेशों में परशियन सम्राटों द्वारा स्थापित किये गये थे। यह यवन कैदी जिन्हें दारयवुश महान् ने लिब्रीयन बार्के से बैक्ट्रीया के प्रदेश में बन्दी कर भेज दिया था, विख्यात ग्रीक इतिहासकार हेरोडोटस के समय में भी वहा निवास करते थे। एरियन के अनुसार इसके एक शताब्दि बाद एलेकजेन्डर के आक्रमण के समय में भी यवन लोग इस प्रदेश में निवास करते थे। कोशान का दर्रा उन ही से बसा हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह ग्रीक उपनिवेश पर्याप्त रूप से विस्तृत थे। इन्हीं लोगों में से एलेक्जेन्डर ने एक निर्दोष यवन उपनिवेशकों का कत्लेआम करवा कर हजारो को मरवा डाला। इस कत्लेआम का सम्भवत. वास्तविक कारण यही था कि उन लोगों ने एलेक्जेन्डर की सहायता करने से इकार कर दिया था। इस प्रकार यह यवन उपनिवेश नामको तथा कम्बोजों, जिन्हें हमनें ओक्सस के निकटवर्ती पर्वतीय प्रदेश में स्थापित किया है, के निकट ही स्थित थे। केवल अशोक के शिलालेखो में ही यवनो तथा कम्बोजों का साथ साथ उल्लेख नहीं हुआ है, प्रत्युत सस्कृत की प्राचीन पुस्तकों में भी उनका साथ ही साथ जिक्र है। हम कालिदास के प्रकरण का उद्धरण कर ही चुके हैं जिसमें कि उसने इन दोनोंको ओक्सस के निकट स्थापित किया है। मनुस्मृति

किया,[८] और यह सब लोग अवश्य ही उसके साम्राज्य के अन्दर रहे होंगे। इन जातियों में से हम यवनों और कम्बोजों का निर्धारण कर ही चुके हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ये वही जातियां हैं जिनकी अशोक के शिलालेखों में चर्चा हुई है।

पारसीक सम्भवतः उन परशिया के प्रान्तों के निवासी थे जिन्हें चन्द्रगुप्त ने अपने साम्राज्य के अन्दर मिला लिया था। वाल्हीक बैक्ट्रीया के उस पहाड़ी प्रदेश के निवासी रहे हों जो मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत था।

अब रहा शकों और किरातों के बारे में, वे सम्भवतः सकाई और उनकी एक जाति किराताई हैं जिन्हें प्राचीन योरोपीय इतिहासकार टालेमी ने जेक्सरटीज़ के तट पर उक्त यवनों और कम्बोजों के पास ही स्थान दिया है[९]। संस्कृत की पुस्तकों से जो उल्लेख हमने ऊपर उद्धरित किये हैं उन में भी शकों और किरातों का ज़िक्र बहुधा यवनों, कम्बजों और पारसीकों के साथ हुआ है[१०]।

---

(८) अस्ति तावत् शक-यवन-किरात-काम्बोज-पारसीक-वाल्हीक प्रभृतिभिः चाणक्यमति-परिगृहीतैः चन्द्रगुप्त-पर्वतेश्वरबलैः उदधिभिरिव प्रलयोच्चलितसलिलैः समन्तात् उपरुद्धं कुसुमपुरम्। (अंक २)

(९) "The tribes of the Sakai, along the Jaxertes are the Karatai and the Komaroi and the people who have all the mountain regions are the Komedai".
Ptolemy's Ancient India. P.13.

(१०) महाभारत के निम्न कथन की भी तुलना करो—

यवनाः किराता गान्धाराश्चीनाः शबर-बर्बराः।
शकास्तुषाराः कङ्काश्च पल्हवाश्चान्ध्रमद्रकाः ॥ १३ ॥
(शान्तिपर्व अ. ६५)

सिन्ध नद के पश्चिम में दक्षिण की ओर चन्द्रगुप्त के साम्राज्य में अराकोशिया तथा गडरोसिया (आधुनिक विलोचिस्तान उसके परे दक्षिण–पूर्वीय परशिया का भाग) के प्रान्त भी श।। थे। यह प्रदेश भी चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस से विजय किया था। सीस्तान में कोहे ख़्वाजा पर हाल ही में बौद्ध मठ के कुछ अवशेष प्राप्त हुए हैं जो सम्भवतः अशोक के समय के हैं। इस से भी यह पता चलता है कि उक्त प्रदेश मौर्य साम्राज्य में था। यदि हम यह प्रमाणित मान लें कि स्थानों के प्राचीन नाम यहां भी अब तक मौजूद हैं, जैसे कि मध्य एशिया में कितनी ही जगह पर, तो हम यह कह सकते हैं कि आधुनिक जश मौरियन (२७·२० उ. ५८·५० पूर्व) मौर्य साम्राज्य के इस ओर की पश्चिम सीमा निर्धारित करता होगा। जैसा कि उक्त नाम से प्रमाणित होता है यह स्थान मौर्य साम्राटों की किसी असाधारण विजय या कीर्ति का स्मारक रहा हो।

किया,[८] और यह सब लोग अवश्य ही उसके साम्राज्य के अन्दर रहे होंगे। इन जातियों में से हम यवनों और कम्बोजो का निर्धारण कर ही चुके हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वे यही जातियां है जिनकी अशोक के शिलालेखों में चर्चा हुई है।

पारसीक सम्भवतः उन परशिया के प्रान्तों के निवासी थे जिन्हें चन्द्रगुप्त ने अपने साम्राज्य के अन्दर मिला लिया था। वाल्हीक बैक्ट्रीया के उस पहाड़ी प्रदेश के निवासी रहे हों जो मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत था।

अब रहा शकों और किरातों के बारे में, वे सम्भवत सकाई और उनकी एक जाति किराताई हैं जिन्हें प्राचीन योरोपीय इतिहासकार टालेमी ने जेक्सरटीज़ के तट पर उक्त यवनों और कम्बोजों के पास ही स्थान दिया है[९]। संस्कृत की पुस्तकों से जो उल्लेख हमने ऊपर उद्धरित किये हैं उन में भी शकों और किरातों का ज़िक्र बहुधा यवनों, कम्बजों और पारसीकों के साथ हुआ है[१०]।

---

(८) अस्ति तावत् शक-यवन-किरात-काम्बोज-पारसीक-वाल्हीक प्रभृतिभि चाणक्यमति-परिगृहीतै चन्द्रगुप्त पर्वतेश्वरबलै: उदधिभिरिव प्रलयोच्चलितसलिलै समन्तात् उपरुद्ध कुसुमपुरम्। (अक २)

(९) "The tribes of the Sakai, along the Jaxertes are the Karatai and the Komaroi and the people who have all the mountain regions are the Komedai"
Ptolemy's Ancient India P 13

(१०) महाभारत के निम्न कथन की भी तुलना करो—

यवना. किराता गान्धाराश्चीना शबर-बर्बरा ।
शकास्तुषारा कङ्काश्च पल्हवाश्चान्ध्रमद्रका ॥ १३ ॥
(शान्तिपर्व अ. ६५)

सिन्ध नद के पश्चिम में दक्षिण की ओर चन्द्रगुप्त के साम्राज्य में अराकोशिया तथा गडरोसिया (आधुनिक बिलोचिस्तान और उसके परे दक्षिण-पूर्वीय परशिया का भाग) के प्रान्त भी शामिल थे। यह प्रदेश भी चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस से विजय किया था। सीस्तान में कोहे ख़्वाजा पर हाल ही में बौद्ध मठ के कुछ अवशेष प्राप्त हुए हैं जो सम्भवतः अशोक के समय के हैं। इस से भी यह पता चलता है कि उक्त प्रदेश मौर्य साम्राज्य में था। यदि हम यह प्रमाणित मान लें कि स्थानों के प्राचीन नाम यहां भी अब तक मौजूद हैं, जैसे कि मध्य एशिया में कितनी ही जगह पर, तो हम यह कह सकते हैं कि आधुनिक जश मौरियन (२७ २० उ. ५८·५० पू॰) मौर्य साम्राज्य के इस ओर की पश्चिम सीमा निर्धारित करता होगा। जैसा कि उक्त नाम से प्रमाणित होता है यह स्थान मौर्य साम्राटो की किसी असाधारण विजय या कीर्ति का स्मारक रहा हो।

अध्याय १३

चन्द्रगुप्त के साम्राज्य के अन्तर्गत खोतान (चीनी-तुर्किस्तान) का प्रदेश।

हम पिछले अध्याय में इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि चन्द्रगुप्त के साम्राज्य का विस्तार बल्ख़, बदकशां तथा पामीर के पर्वतीय प्रदेश तक था। अब हम उन प्रमाणों पर विचार करेंगे जिनके कारण हम यह विचार करते हैं कि उक्त प्रदेशों का पार्श्ववर्ती देश भी जो अब चीनी तुर्किस्तान के नाम से प्रसिद्ध है मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत था।

खोतान के प्राचीन इतिहास पर तिब्बत तथा चीन की दन्तकथाएं।

तिब्बत के ऐतिहासिक संग्रहों में कितने ही प्रकार से इसका उल्लेख हुआ है कि खोतान का प्राचीन राज्य मौर्यों से बहुत कुछ सम्बद्धित था। तिब्बत की ऐतिहासिक पुस्तकों के अनुसार खोतान के राजवंश का प्रारम्भ अशोक के पुत्र कुस्तान से हुआ। यह कथा इस प्रकार है—

अशोक के तीसवें वर्ष में उस की रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया। जब भविष्यद्वक्ताओं ने बताया कि यह बालक सम्राट् को सिंहासन से उतार कर उसके जीवन काल में ही राजा

बनेगा, तब सम्राट् ने उसे एकान्त स्थान में डाल देने की आज्ञा दी। उसकी माता ने भी यह विचार कर कि यदि उस बालक को अलग नहीं किया गया तो सम्राट् उसे अवश्य मरवा देगा वैसा ही किया। परन्तु जब उस बालक को एकान्त स्थान में डाल दिया गया तो पृथ्वी से स्तनों का उद्रेक हुआ, और वह निरन्तर उनसे अपना आहार प्राप्त करता रहा। इस प्रकार उसके जीवन की रक्षा हुई। इसी कारण उसका नाम कुस्तान पड़ा। उस बालक को वैश्रवन देव चीन के अधिपति के पास ले गये। उसके ९९९ पुत्र थे परन्तु एक सहस्र की संख्या को पूरा करने के लिये उसके हृदय में एक पुत्र की अभिलाषा शेष थी, अतः उसने उस बालक का पालन–पोषण किया। जब कुस्तान को अपनी यथार्थ उत्पत्ति का पता चला तो उसे अपने लिये एक राज्य प्राप्त करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। अपनी इस भावना के अनुसार जब वह बारह वर्ष का हुआ तो उसने दस हज़ार व्यक्तियों की एक सेना एकत्रित की, और पश्चिम दिशा की ओर एक राज्य स्थापित करने के विचार से चल दिया। अपने इस उद्योग में संलग्न वह खोतान पहुँचा। लगभग इसी समय यशस नामक अशोक के एक मन्त्री को भारतवर्ष त्यागने के लिये विवश होना पड़ा, क्योंकि सम्राट् उसके सम्बन्धियों से रूष्ट हो गया था। इस प्रकार उसने ७००० व्यक्तियों सहित भारतवर्ष से विदा ली, और पहिले वह पश्चिम की ओर गया, तत्पश्चात् पूर्व की ओर चलकर उसने अपने लिये एक निवास स्थान निर्धारित किया। इस प्रकार वह

अध्याय १३

चन्द्रगुप्त के साम्राज्य के अन्तर्गत खोतान (चीनी-तुर्किस्तान) का प्रदेश।

हम पिछले अध्याय में इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि चन्द्रगुप्त के साम्राज्य का विस्तार बल्ख़, बदकशां तथा पामीर के पर्वतीय प्रदेश तक था। अब हम उन प्रमाणों पर विचार करेंगे जिनके कारण हम यह विचार करते हैं कि उक्त प्रदेशों का पार्श्ववर्ती देश भी जो अब चीनी तुर्किस्तान के नाम से प्रसिद्ध है मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत था।

खोतान के प्राचीन इतिहास पर तिब्बत तथा चीन की दन्तकथाएं।

तिब्बत के ऐतिहासिक संग्रहों में कितने ही प्रकार से इसका उल्लेख हुआ है कि खोतान का प्राचीन राज्य मौर्यों से बहुत कुछ सम्बन्धित था। तिब्बत की ऐतिहासिक पुस्तकों के अनुसार खोतान के राजवंश का प्रारम्भ अशोक के पुत्र कुस्तान से हुआ। यह कथा इस प्रकार है—

अशोक के तीसवें वर्ष में उस की रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया। जब भविष्यद्वक्ताओं ने बताया कि यह बालक सम्राट् को सिंहासन से उतार कर उसके जीवन काल में ही राजा

बनेगा, तब सम्राट् ने उसे एकान्त स्थान में डाल देने की आज्ञा दी। उसकी माता ने भी यह विचार कर कि यदि उस बालक को अलग नहीं किया गया तो सम्राट् उसे अवश्य मरवा देगा वैसा ही किया। परन्तु जब उस बालक को एकान्त स्थान में डाल दिया गया तो पृथ्वी से स्तनों का उद्रेक हुआ, और वह निरन्तर उनसे अपना आहार प्राप्त करता रहा। इस प्रकार उसके जीवन की रक्षा हुई। इसी कारण उसका नाम कुस्तान पडा। उस बालक को वैश्रवन देव चीन के अधिपति के पास ले गये। उसके ९९९ पुत्र थे परन्तु एक सहस्र की सख्या को पूरा करने के लिये उसके हृदय में एक पुत्र की अभिलाषा शेष थी, अत उसने उस बालक का पालन–पोषण किया। जब कुस्तान को अपनी यथार्थ उत्पत्ति का पता चला तो उसे अपने लिये एक राज्य प्राप्त करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। अपनी इस भावना के अनुसार जब वह बारह वर्ष का हुआ तो उसने दस हजार व्यक्तियों की एक सेना एकत्रित की, और पश्चिम दिशा की ओर एक राज्य स्थापित करने के विचार से चल दिया। अपने इस उद्योग में संलग्न वह खोतान पहुचा। लगभग इसी समय यशस नामक अशोक के एक मन्त्री को भारतवर्ष त्यागने के लिये विवश होना पड़ा, क्योंकि सम्राट् उसके सम्बन्धियो से रूष्ट हो गया था। इस प्रकार उसने ७००० व्यक्तियों सहित भारतवर्ष से विदा ली, और पहिले वह पश्चिम की ओर गया, तत्पश्चात् पूर्व की ओर चलकर उसने अपने लिये एक निवास स्थान निर्धारित किया। इस प्रकार वह

खोतान नदी के नीचे वाले देश में पहुचा। इधर कुस्तान के दो अनुगामी जो उसक शिविर से अये थे एक टीले पर पहुचे। यह एक जनशून्य स्थान था, जिसके अवलोकन से ऐसा मालूम होता था कि यह आबाद होने के लिये आमत्रण कर रहा था। यहा वे यशस से मिले जो उस स्थान से दक्षिण की ओर पडाव डाले था। जब यशस को उनक अधिकारी का पता चला तो उसने कुस्तान के पास निम्न सन्देशा भेजा, " हमें परस्पर मिलकर खोतान के इस प्रदेश को अपना निवास स्थान बना लेना चाहिये। तुम यहा के अधिपति हो जाना और मैं तुम्हारा म त्री बन जाऊँगा "। तब कुस्तान अपने समस्त अनुगामियों सहित खोतान नदी के दक्षिण प्रदेश में यशस से मिलने आया। युवराज तथा मन्त्री अपने भवनों के अवस्थान पर सहमत न हो सके। इस पर दोनों दलों की ओर से युद्ध की दुंदुभी बजी। परन्तु यह युद्ध वैश्रवन तथा श्री महादेवी के सहसा वहा पहुंच जाने से टल गया। और खास उसी स्थान पर दोनों के लिये एक एक मदिर बनवा दिया गया। कुस्तान वहां का अधिपति बनाया गया और यशस मन्त्री।

तिब्बत के ऐतिहासिक सग्रहों से हमें यह भी ज्ञात होता है कि खोतान राज्य की स्थापना के समय कुस्तान १९ वर्ष का था, और यह घटना बुद्ध के निर्वाण के २३४ वर्ष पश्चात् हुई। सीलोन की दन्तकथाओं की काल–सूची से भी उक्त घटना के काल का सामजस्य स्थापित होता है, क्योंकि सीलोन की कथाओं के अनुसार स्वय अशोक बुद्ध भगवान् के निर्वाण से २१८ वर्ष पश्चात् सिंहासन

पर बैठा, अर्थात् कुस्तान द्वारा खोतान के राज्य स्थापित करने से १६ वर्ष पूर्व। किसी भी दन्तकथा में पूर्णतया विश्वास नहीं किया जा सकता, पर ऐसा प्रतीत होता है कि तिब्बत की उक्त कथा में यह ऐतिहासिक तथ्य सुरक्षित है कि कदाचित् अपने शासन काल के सोलहवें वर्ष में अशोक ने अपने पुत्र कुस्तान को खोतान के राज्य का प्रतिनिधि-शासक बना कर भेजा। जैसा कि डॉ. टामस का मत है, कुस्तान अशोक का बड़ा पुत्र कुनाल ही हो, जो एक समय तक्षशिला का प्रतिनिधि शासक और चीन की दन्तकथाओं के अनुसार, जैसा कि हमने नीचे उल्लेख किया है, खोतान के राजवंश का संस्थापक था[1]। तिब्बतीय पुस्तकों में अभिव्यक्त कुस्तान से सम्बद्धित यशस मन्त्री की कथा भी सत्य मालूम होती है, क्योंकि अश्वघोष के सूत्रालङ्कार में भी यशस मन्त्री का ज़िक्र आया है[2]।

चीन की स्वतंत्र दन्तकथायें भी तिब्बत की इस दन्तकथा को कि खोतान के प्राचीन राजवंश का संस्थापक अशोक का पुत्र ही था, पुष्ट करती हैं। स्थानीय दन्तकथाओं के आधार पर चीनी यात्री हुवानच्वांग ने भी प्राचीन खोतान के राज-वंश के संस्थापक का लगभग वैसा ही विवरण दिया है जैसा कि हमें तिब्बतीय ऐतिहासिक संग्रहों से प्राप्त होता है। हुवानच्वांग के वृत्तान्त के अनुसार खोतान राज्य की स्थापना चीनियों तथा भारतीयों के सम्मिलित उद्योग से अशोक के शासन काल में हुई। इन भारतीयों को

(१) Cambridge History of India पुस्तक १. पृ. ५००
(२) Cambridge History of India पु. १ पृ ५०७

अशोक ने तक्षशिला में अवस्थित अपने पुत्र को नेत्रविहीन करने के कारण वहां से निर्वासित कर दिया था। परन्तु हुवानच्वांग का वृत्तान्त तिब्बतीय विवरण से कुछ भिन्न है। हुवानच्वांग ने खोतान के राज-वंश की परम्परा का प्रारम्भ चीन के अधिपति के एक पुत्र से किया है। उसका यह कथन ठीक नहीं था, क्योंकि अशोक के पुत्र सम्बन्धी उक्त तिब्बतीय दन्तकथा की पुष्टि हुवानच्वांग के जीवनचरित्र से होती है। यह जीवनचरित्र हुई-ली ने लिखा था और यानसंग ने उसे पूर्ण कर कर संपादित किया था। यह दोनों व्यक्ति हुवानच्वांग के समकालीन और उसके शिष्य थे। हुवानच्वांग के जीवनचरित्र में हमें लिखा मिलता है कि "खोतान के राजा के वंश का संस्थापक महाराज अशोक का सब से बड़ा पुत्र था, और वह तक्षशिला के राज्य में निवास करता था"[१]। इस जीवन--चरित्र में खोतान राज्य की उत्पत्ति सम्बन्धी शेष वृत्तान्त हुवानच्वांग के विवरण के नितान्त अनुरूप ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि चीन के महान् यात्री हुवानच्वांग के जीवन-चरित्र के रचयिताओं ने जान बूझ कर खोतान के राजवंश की स्थापना समबंधी उस गलती को ठीक किया जो उनके गुरु ने की थी। इस प्रकार यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि हुवानच्वांग के समय में चीन के निवासी उस कथा को जानते थे जिसके अनुसार खोतान के राजवंश का प्रारम्भ तिब्बत की कथाओं के समान ही अशोक के पुत्र से हुआ स्वीकार किया जाता था।

---

(१) Ancient Khotan. A. Stein. पृ. १५६.

एक अन्य ही तिब्बतीय दन्तकथा के अनुसार आर्यावर्त के सम्राट् अशोक ने बुद्ध के निर्वाण के २५० वर्ष पश्चात् खोतान की यात्रा की। जैसा कि हम ऊपर बता आये हैं अशोक बुद्ध-भगवान् के निर्वाण के २१८ वर्ष पश्चात् सिंहासन पर बैठा। उसकी खोतान की यात्रा इस प्रकार उसके शासन काल के (२५०-२१८) ३२ वें वर्ष में हुई। अशोक के शिलालेखों से हमें यह मालूम है कि वह अपने विशाल साम्राज्य के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में समय समय पर स्वयं दौरा करता था।

ऐसा प्रतीत होता है कि जिन दन्तकथाओं पर हमने ऊपर विचार किया है उनका निम्न ऐतिहासिक सत्य मध्यबिन्दु है। कदाचित् अपने शासन के सोलहवें वर्ष में अशोक ने अपने पुत्र कुनाल को खोतान का वाईसराय बना कर भेजा। अशोक ने स्वयं खोतान की यात्रा अपने शासन काल के बत्तीसवें वर्ष में की। ऐसा भी प्रतीत होता है कि अशोक की मृत्यु के पश्चात् जब मौर्य साम्राज्य विखण्डित हुआ तो उसके पुत्र ने खोतान का स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया, और कितनी ही शताब्दियों तक मौर्यवंश वहां राज्य करता रहा। तिब्बतीय ऐतिहासिक संग्रहों में खोतान के अनेक शासकों के नाम दिये गये हैं, जिनके लिये यह भी उल्लेख किया गया है कि वे अशोक के पुत्र के वंशज हैं। बहुधा इन नामों में विजय उपसर्ग पाया जाता है, उदाहरणार्थ विजय सम्भव, विजय वीर्य, विजय जय, विजयसिंह और विजय कीर्ति। यहां पर यह बताना भी अनुकूल ही होगा कि

(४) Rockhill. Life of Buddha पृ. २३७.

अविजयसिंह का नाम खोतान के शासक के रूप में एक प्राचीन राजकीय पत्र में लिखा मिला है। यह पत्र खरोष्ठी लिपि में लिखा हुआ है और खोतान प्रदेश में स्टीन को प्राप्त हुआ है। यह नाम और तिब्बतीय ऐतिहासिक संग्रहों में अभिव्यक्त विजयसिंह एक ही व्यक्ति हों, इस प्रश्न पर उपयुक्तरूप से जांच होना अपेक्षित है।

खोतान में भारतीय प्राकृत और खरोष्ठी लिपि का व्यवहार।

चीनी तुर्किस्तान के कितने ही स्थानों से स्टीन ने जो प्राचीन खरोष्ठी लेख एकत्रित किये हैं वे पर्याप्तरूप से चीन तथा तिब्बत की उन दन्तकथाओं को प्रमाणित सिद्ध करते हैं जिनकी हम ऊपर चर्चा कर आये हैं। स्टीन ने लिखा है कि यहां से प्राप्त खरोष्ठी राजकीय पत्रों से असदिग्धरूप यह सिद्ध हो जाता है कि एक समय समस्त खोतान प्रदेश के अन्दर राजकार्यों में एक भारतीय भाषा का प्रयोग होता था। यह भाषा पश्चिमोत्तर भारत की प्राचीन प्राकृत से बहुत ही निकटरूप से सम्बद्ध थी। इन में से सैकडों राजकीय पत्र व्यावहारिक जीवन तथा सामाजिक व्यवस्था की विभिन्न समस्याओं से पूर्ण हैं। यदि उनकी संख्या और उनके मिलने के स्थानों पर विचार किया जाय तो यह स्वीकार करना पड़ता है कि उनकी भाषा का प्रसार उस प्रदेश में भली भांति सर्व व्यापी था। इस भारतीय भाषा के वहां प्रयुक्त होने से जिस निष्कर्ष पर हम पहुंचते है वह

नइ राजकीय पत्रों की खरोष्ठी लिपि के कारण अत्यधिक पुष्ट हो जाता है। यह स्पष्ट ही है कि भारतवर्ष में विशेषरूप से यह लिपि उस प्रदेश की है जिसका की ईसवी संवत् की कई शताब्दियों पूर्व और पश्चात् तक्षशिला अथवा गान्धार केन्द्र रहा है। इन राजकीय पत्रों की लेखनशैली भी प्राचीन भारतीय शैली के समान ही है।

पश्चिमोत्तर भारत की प्राकृत और वहां की खरोष्ठी लिपि का प्रसार किस प्रकार खोतान तथा उसके पार्श्ववर्ती प्रदेशों में हुआ, यह अब तक एक पहेली ही है। वहां बौद्ध धर्म का प्रसार ही वहां से प्राप्त राजकीय पत्रों की भाषा और लिपि के प्रचार का विश्वस्त कारण नहीं कहा जा सकता। प्राप्त प्रमाणों पर दृष्टिपात करने से यही ज्ञात होता है कि मध्य एशिया में बौद्ध धर्म के साथ वहां पर धार्मिक भाषा संस्कृत ही आयी, और वह ब्राह्मी लिपि में लिखी जाती थी। इन प्रदेशों में भारतीय प्राकृत और खरोष्ठी लिपि के प्रचार का कारण भारत के पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त से कुछ काल के लिये कुशान शक्ति का वहां स्थापित होना भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। खोतान पर कुशान जाति के अधिकार होने में सन्देह ही है। यदि यह राजनैतिक सम्बन्ध कभी वास्तव में स्थापित हुआ भी तो अवश्य ही वह बहुत ही थोड़े समय के लिये हुआ; इसके अलावा जिस प्रभाव से यह स्थापित हुआ वह भारतवर्ष का न हो कर मध्य एशिया का था, जिससे मध्य एशिया की भाषा का पश्चिमोत्तर भारत में प्रचार होना अधिक सम्भव होता न कि इसके विपरीत।

पश्चिमोत्तर भारत की प्राकृत भाषा और वहां की खरोष्टि लिपि दोनों का ही सारे खोतान प्रदेश में प्रयोग होता था। यह भाषा और लिपि जैसा कि अशोक के उत्कीर्ण लेखों से असंदिग्धरूप से अभिव्यक्त है गान्धार और तक्षशिला प्रदेश की थी। इनके खोतान प्रदेश म प्रयुक्त होने का कारण स्पष्टरूप से अभिव्यक्त हो जाता है, यदि हम खोतान तथा उसके पार्श्ववर्ती प्रदेश में मौर्य साम्राज्य के प्रसार सम्बन्धी तिब्बत तथा चीन की दन्तकथाओं में निहित सत्य का निरूपण कर सकें। जैसा हम ऊपर बता आये हैं इन दन्त-कथाओं का उल्लेख चीनी तथा तिब्बत की ऐतिहासिक वृत्तान्त माला में हुआ है। इन के अनुसार खोतान प्रदेश की प्राचीन जन-संख्या का अधिकांश भाग तक्षशिला प्रदेश से आये हुए प्रवासियों का था। यदि हमें सारे प्राचीन खोतान प्रदेश में दैवयोग से एकत्र विविध विषयों से पूर्ण बहुत सा ऐतिहासिक संग्रह प्राप्त हो, जो वहां के शासन विधान तथा साधारण जीवन समस्याओं से निकटस्थरूप से सम्बद्ध हो और जिसकी भाषा ईसवी संवत के ठीक पूर्व और पश्चात् की शताब्दियों के नितान्त पश्चिमोत्तर प्रदेश से प्राप्त सिक्कों तथा उत्कीर्ण लेखों की भाषा के बहुत कुछ समान ही हो, तो हम अवश्य ही यह विश्वास करने पर विवश हो जाते हैं कि उक्त चीनी और तिब्बतीय दन्तकथाओं में कोई ऐतिहासिक तथ्य निहित है।

चन्द्रगुप्त नन्द का जारज पुत्र और मगध का निवासी था, इस तथ्य को मान लेने से मौर्य-काल के राजनैतिक इतिहास का अनुशीलन बहुत ही अनुपयुक्तरूप से हुआ। पिछले अध्यायों में

हमने यह दिखाया है कि चन्द्रगुप्त का नन्दों से कोई सम्बन्ध न था, और न वह मगध का ही निवासी था। वह वास्तव में गान्धार प्रदेश से आया था। पश्चिमोत्तर प्रदेश और मध्य एशिया में ही प्रथम उसने अपने शक्ति का संगठन किया और मगध को भी उसने भारतवर्ष के अन्य देशों की तरह विजय किया। एक बार जब यह स्वीकार कर लिया गया कि चन्द्रगुप्त और उसके द्वारा स्थापित मौर्य वंश का उदय मगध से हुआ तो किसी ने भी इस ओर ध्यान देना आवश्यक न समझा कि मौर्य साम्राज्य का प्रसार पूर्वीय तुर्किस्तान की तो बातही अलग रही मध्य एशिया तक भी किस प्रकार पहुंचा। अतः एक पुष्ट प्रमाण के विद्यमान होते हुए भी विद्वानों ने पश्चिमोत्तर भारत के परे मौर्य साम्राज्य के स्पष्ट प्रसार की ओर ध्यान न दिया। खोतान तथा उसके पार्श्ववर्ती प्रदेश मे साधारणरूप से तथा राजकीय-कार्यों में भी पश्चिमोत्तर भारत की भारतीय प्राकृत और वहां की खरोष्ठी लिपि का प्रयोग क्यों होता था, इस तथ्य का पूर्ण निरूपण हमारे इस निष्कर्ष से हो जाता है कि गान्धार ही मौर्यों का यथार्थ निवास स्थान था, और खोतान प्रदेश मौर्यों के अति व्यवस्थित और उपयुक्तरूप से शासित साम्राज्य के अन्तर्गत था, इस ही के कारण उक्त प्राकृत और खरोष्ठी लिपि वहां प्रचलित हुई।

चीनी तुर्किस्तान के विभिन्न स्थानों से स्टीन ने खरोष्ठी लिपि में लिखित जो राजकीय पत्र एकत्रित किये हैं, वे मौर्य साम्राज्य के तीन व चार सौ वर्ष बाद के हैं। इस कारण वे इन प्रदेशों के

ईसवी सम्वत् के प्रारम्भ से पूर्व शताब्दियों के इतिहास पर अधिक प्रकाश नहीं डाल सकते। परन्तु अनेक खरोष्ठी उत्कीर्ण लेखों में प्रयुक्त 'प्रियदर्शनस् प्रियदेवम्'[५] के समान उपाधियों का रूप हमें अशोक के उत्कीर्ण लेखों के 'देवनम प्रियम् प्रिय दर्शन' का स्मर्ण कराये बिना नहीं रहता। यह राजोचित उपाधियां हैं जिन्हें अशोक और उसके पिता तथा पितामह ने भी धारण की थीं[६]। कालान्तर में जिस समय यह राजकीय पत्र लिखे गये थे मौर्यों की इस राजोचित उपाधि का महत्व गौण रह गया होगा। इन में से अनेक खरोष्ठी राजकीय पत्रों में सम्राट् की उपाधि के रूप में महानुभाव महाराज का प्रयोग हुआ है। यह इतिहास का सर्व विदित तथ्य है कि एक काल की राजोचित उपाधि का दूसरे काल में गौण स्थान रह जाता है।

इन बहुत से राजकीय पत्रों में हमें कुनाल का नाम भी अनेक स्थलों पर मिलता है। यह हमें अशोक के पुत्र कुनाल की स्मृति कराता है। इस नाम का प्रयोग भी अशोक के समय की उस परम्परा के प्रचलित होने का द्योतक है जोकि इन राजकीय पत्रों के लिखे जाने के समय में मौजूद थी।

---

(५) देखो Kharosti. Inscriptions by Boyer, Rapson and Senart.

(६) मुद्राराक्षस के चौथे अंक में चन्द्रगुप्त को प्रियदर्शन् की उपाधि से विभूषित किया गया है।

खोतान में भारतीय प्रवासियों की वर्ग परम्परा।

खोतान संबंधी दन्तकथाओं से और वहां से प्राप्त राजकीय पत्रों की भाषा और लिपि से यह पता चलता है कि भारत के नितान्त पश्चिमोत्तर से प्रवासियों ने खोतान में अपना एक उपनिवेश स्थापित किया। यह भी प्रतीत होता है कि उन प्रवासियों ने वहां की जन संख्या के जाति निर्माण में भी अपनी वर्गीय विशेषताओं की छाप लगायी। कितने ही विद्वानों ने चीनी तुर्किस्तान के एक वर्तमान वर्ग की ओर हमारा ध्यान दिलाया है जो कि पश्चिमोत्तर तथा काश्मीर में निवास करनेवाले भारतीय आर्यों के समान हैं।

चीनी तुर्किस्तान के मौर्य साम्राज्य के अंतर्गत होने पर भौगोलिक प्रकाश।

भौगोलिक दृष्टि से भी बहुत अंशों में यह अभिव्यक्त हो जाता है कि उन प्रारम्भिक शताब्दियों में चीनी तुर्किस्तान उसी राष्ट्र के संरक्षण में था जिसके कि संरक्षण मे हिंदूकुश और पामीर के पहाड़ी प्रदेश थे। चीनी तुर्किस्तान के दक्षिण में हिमाच्छादित कुइनलन पर्वत माला उसे तिब्बत से पृथक करती है। पूर्व की ओर उच्च नानशन पर्वत तथा गोबी का रेगिस्तान है। उत्तर की ओर भी वह उन्हीं के समान अभेद्य टीयनशान पर्वत से घिरा हुआ है। अब केवल पश्चिम दिशा ही ऐसी है कि जिस ओर से होकर सरलता से वहां पहुंचा जा सकता है। बदकशां से प्रारम्भ होकर वक्खान घाटी तथा वक्खजीर दर्रे

द्वारा चीनी तुर्किस्तान को जाने वाला मार्ग बहुत ही प्राचीन और महत्वपूर्ण है। जैसा कि स्टीन ने लिखा है "वक्खान घाटी वाला मार्ग बहुत ही प्राचीन है, यह प्राचीन समय में युरोप, पश्चिम एशिया, तथा मध्य एशिया से होता हुआ, सुदूर पूर्व की ओर जाता था। वक्खान पर दृष्टि पात करने से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति ने इस अभिप्राय से उसे बनाया है कि वह बदकशां के उर्वर प्रदेश से तारिम प्रदेश के उपजाऊ मैदान का एक अति सीधा मार्ग हो"[७]। वक्खजीर दर्रे के लिये भी यही कहा जा सकता है कि वह तगदुम्बाश पामीर तथा सारीकोल घाटी को औक्सस के उत्तरीय प्रवाह से मिलाता है। उसके ऊपर हो कर प्राचीन समय से अवश्य ही चीनी तुर्किस्तान और औक्सास पर स्थित प्रदेश को जोड़ने वाला एक महत्वपूर्ण मार्ग था।

इस प्रकार चीनी तुर्किस्तान में पश्चिम की अपेक्षा अन्य दिशाओं से प्रवेश करना बहुत कठिन था। इस से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि चीनी तुर्किस्तान पर दूसरी शताब्दि बी. सी. तक कोई चीनी राजनैतिक प्रभाव क्यों नहीं पड़ा। इन प्रदेशों पर तिब्बत की ओर से प्रथम आक्रमण और भी पश्चात् लगभग, ६६२ ए. डी., के हुआ।

हम इस निष्कर्ष पर पहिले ही पहुंच चुके हैं कि मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत बदकशां और पामीर के पर्वतीय प्रदेश भी थे।

---

(७) Serindia पु. १. पृ. ६०.

उक्त निष्कर्ष और इस अध्याय में एकत्रित प्रमाणों के आलोक में हम आसानी से यह समझ सकते हैं कि किस प्रकार खोतान तक मौर्यों का साम्राज्य फैला और चीनीयों के आक्रमण के पूर्व आधुनिक चीनी तुर्किस्तान के एक बहुत बड़े भाग का राजनैतिक संरक्षण मौर्यों द्वारा होता था। जहा तक सम्भव है स्वयं महान् चन्द्रगुप्त ने ही इस प्रदेश पर भी विजय प्राप्त की थी, क्योंकि वास्तव में उसी के समय मौर्य साम्राज्य, जैसा कि असदिग्धरूप से स्पष्ट है, सिन्ध नद के पश्चिम तथा उत्तर में बहुत दूर तक फैल गया था।

अध्याय १४

चन्द्रगुप्त के शासन काल का प्रारम्भिक वर्ष ।

चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन कब से आरम्भ हुआ, इसका निश्चय करना बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की अन्य प्रमुख घटनाओं के ठीक ठीक समय का निश्चय करना भी बहुत कुछ इसी पर निर्भर है। विभिन्न भारतीय इतिहास परम्पराएं, ब्राह्मणीय, बौद्ध और जैन, हमको उक्त महत्वपूर्ण प्रश्न के हल करने में अधिक सहायता नहीं देतीं, क्योंकि इन तीनों में चन्द्रगुप्त के प्रारम्भिक वर्ष की भिन्न भिन्न तारीखें मिलती हैं। प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों ने यदि चन्द्रगुप्त का ज़िक्र नहीं किया होता तो अन्य घटनाओं के समान उसके समय का भी ठीक ठीक निश्चय करना असम्भव हो जाता।

आरम्भ हुआ होगा। ३२५ बी. सी. में एलेक्ज़ेन्डर भारत से वापिस गया और इसही के बाद चन्द्रगुप्त का उदय हुआ। और ३०५ बी. सी. में जब सेल्यूकस ने भारत की ओर आक्रमण किया तब उस समय चन्द्रगुप्त भारत का सम्राट् था।

हमारे विचार से चन्द्रगुप्त का शासन ३२५ बी. सी. में ही पश्चिमोत्तर भारत से आरम्भ हुआ। हमारी इस धारणा का आधार प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों के इस कथन पर है कि चन्द्रगुप्त ने ही भारत से ग्रीक सत्ता को नष्ट किया था, और यह बात एलेक्ज़ेन्डर के भारत से ठीक लौटने के समय में ही हुई। कतिपय आधुनिक योरोपीय इतिहासकारों ने चन्द्रगुप्त के शासन का प्रारम्भिक वर्ष ३२२ बी सी. व उसके बाद के दो तीन वर्ष माने हैं। उनकी इस धारणा का मुख्य कारण उनका यह विश्वास है कि एलेक्ज़ेन्डर के भारत से वापिस जाने के कई वर्ष पश्चात् तक पश्चिमोत्तर भारत ग्रीक शासन के अधिकार में रहा, और ३२२ बी. सी. में जब कि वहां एलेक्ज़ेन्डर की मृत्यु की खबर पहुंची (जो ३२३ बी. सी. में हुई थी) तब ही उस प्रदेश ने अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की होगी। जैसा कि विन्सेन्ट स्मिथ ने कहा है "३२३ बी सी. में एलेक्ज़ेन्डर की मृत्यु होने पर उसके भारत में लौटने का भय मिट गया और उसके तुरन्त ही पश्चात् भारतीय राजाओं ने अपने को स्वतंत्र करने का प्रयत्न शुरू कर दिया होगा। और ३२२ बी सी. के आरम्भ होते

अध्याय १४

चन्द्रगुप्त के शासन काल का प्रारम्भिक वर्ष।

चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन कब से आरम्भ हुआ, इसका निश्चय करना बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की अन्य प्रमुख घटनाओं के ठीक ठीक समय का निश्चय करना भी बहुत कुछ इसी पर निर्भर है। विभिन्न भारतीय इतिहास परम्पराएं, ब्राह्मणीय, बौद्ध और जैन, हमको उक्त महत्वपूर्ण प्रश्न के हल करने में अधिक सहायता नहीं देतीं, क्योंकि इन तीनों में चन्द्रगुप्त के प्रारम्भिक वर्ष की भिन्न भिन्न तारीखें मिलती हैं। प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों ने यदि चन्द्रगुप्त का जिक्र नहीं किया होता तो अन्य घटनाओं के समान उसके समय का भी ठीक ठीक निश्चय करना असम्भव हो जाता।

परन्तु जब हम उक्त महत्वपूर्ण प्रश्न को हल करने के लिये प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों की शरण लेते हैं तो उनके भी चन्द्रगुप्त सम्बन्धी वृत्तान्तों से उसके शासन के प्रारम्भिक वर्ष का ठीक ठीक निश्चय करना सुगम नहीं होता। हां इतना निश्चयरूप से अवश्य कहा जा सकता है कि ३२५ बी. सी. और ३०५ बी. सी के बीच किसी वर्ष में चन्द्रगुप्त का शासन

आरम्भ हुआ होगा। ३२५ बी. सी. में एलेक्ज़ेन्डर भारत से वापिस गया और इसही के बाद चन्द्रगुप्त का उदय हुआ। और ३०५ बी. सी. में जब सेल्यूकस ने भारत की ओर आक्रमण किया तब उस समय चन्द्रगुप्त भारत का सम्राट् था।

हमारे विचार से चन्द्रगुप्त का शासन ३२५ बी. सी. में ही पश्चिमोत्तर भारत से आरम्भ हुआ। हमारी इस धारणा का आधार प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों के इस कथन पर है कि चन्द्रगुप्त ने ही भारत से ग्रीक सत्ता को नष्ट किया था, और यह बात एलेक्ज़ेन्डर के भारत से ठीक लौटने के समय में ही हुई। कतिपय आधुनिक योरोपीय इतिहासकारों ने चन्द्रगुप्त के शासन का प्रारम्भिक वर्ष ३२२ बी सी. व उसके बाद के दो तीन वर्ष माने हैं। उनकी इस धारणा का मुख्य कारण उनका यह विश्वास है कि एलेक्ज़ेन्डर के भारत से वापिस जाने के कई वर्ष पश्चात् तक पश्चिमोत्तर भारत ग्रीक शासन के अधिकार में रहा, और ३२२ बी. सी. में जब कि वहां एलेक्ज़ेन्डर की मृत्यु की खबर पहुंची (जो ३२३ बी. सी में हुई थी) तब ही उस प्रदेश ने अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की होगी। जैसा कि विन्सेन्ट स्मिथ ने कहा है "३२३ बी सी. में एलेक्ज़ेन्डर की मृत्यु होने पर उसके भारत में लौटने का भय मिट गया और उसके तुरन्त ही पश्चात् भारतीय राजाओं ने अपने को स्वतंत्र करने का प्रयत्न शुरू कर दिया होगा। और ३२२ बी सी. के आरम्भ होते

होते भारत से मेसेडोनियन राजसत्ता का लोप होगया होगा"[1]।

विन्सेन्ट स्मिथ का उक्त कथन एलेक्ज़ेन्डर के भारत सम्बन्धी आक्रमण की भ्रमात्मक कल्पनाओं पर निर्धारित है। हम पिछले अध्यायों में दिखा चुके हैं कि एलेक्ज़ेन्डर की भारत पर किस प्रकार की विजय थी। प्रथम तो अश्वकों को ही वह पूरी तरह न हरा सका था। फिर झेलम के युद्ध में पोरस ने उसको अच्छा सबक दिया। पुनः सारे दक्षिण पन्जाब और सिन्ध में उसके खिलाफ़ घोर विद्रोह उठ खड़ा हुआ, और बड़ी कठिनता से मक़रान की मरुभूमि से भागकर उसने अपनी जान बचाई। अब पूछा जाय कि क्या आवश्यकता थी कि उससे स्वतंत्र होने के लिये भारतवासी उसकी मृत्यु की इन्तज़ारी करते। वास्तव में, जैसा हम पिछले एक अध्याय में दिखा चुके हैं, उसके भारत से बाहर निकलने के पूर्व ही उसके मुख्य सत्रप, जैसे कि निकेनौर, फ़िलिप्स और अपोलोफ़नीज़, मार दिये गये। पाईथन भी सिन्ध से थोड़े ही समय के पश्चात् भाग गया। केवल योडेमस नाम का एक छोटा सेना पदाधिकारी ही भारत में एलेक्ज़ेन्डर के यहां से जाने के पश्चात् भी कुछ वर्ष तक रहा, पर जैसा हमारा अनुमान है उसने पोरस, आम्भी व स्वयं चन्द्रगुप्त ही के आधीन नौकरी करली हो। योडेमस का तो जब बेबिलोन आदि में एलेक्ज़ेन्डर के साम्राज्य का बटवारा हुआ नाम तक भी नहीं आया। यह

(१) Early History of India. पृ. ११६.

मानना नितान्त असगत होगा कि एलेक्ज़ेन्डर के भारत से लौटने और उसकी मृत्यु के पश्चात् भी योडेमस भारत में ग्रीक शासन को चलाता रहा। इस बात को कहानी के रूप माना जा सकता है पर यह ऐतिहासिक तथ्य कदापि नहीं हो सकता। सत्य तो यह मालूम होता है कि भारत से ग्रीक सत्ता का लोप तो यहां से एलेक्ज़ेन्डर के लौटने के पहिले ही से प्रारम्भ हो गया था और उसके वहां से बाहर जाते तक तो उसका पूरा विनाश हो हो गया।

हम पिछले अध्यायों में यह भी दिखा चुके हैं कि सम्भवतः एलेक्ज़ेन्डर के विरुद्ध इस स्वतन्त्रता के प्रयत्न की बागडोर चन्द्रगुप्त और चाणक्य के हा हाथ में थी। जयसवाल ने ठीक ही लिखा है कि " जिस समय एलेक्ज़ेन्डर सिन्ध और ब्लोचिस्तान की मरुभूमि से अपने प्राण बचा कर भाग रहा था, चन्द्रगुप्त अपनी शक्ति को बढा रहा था। एलेक्ज़ेन्डर के प्रभाव का उसके भारत से लौटने के समय ही लोप हो गया। उसके विरुद्ध स्वतंत्रता प्राप्त करने का सबसे अच्छा अवसर तो उसका यहां से लौटने ही का समय था "[२]।

हम अपना यह मत प्रकट कर ही चुके हैं कि चन्द्रगुप्त असल में गांधार देश का निवासी था, और पश्चिमोत्तर भारत में ही प्रथम उसकी शक्ति का सगठन हुआ। इसके साथ साथ यदि हम इस बात को भी ध्यान में रखते हैं कि उस

---

(२) Journal of the Asiatic Society of Bengal पृ. ११७.

ही ने भारत में ग्रीक सत्ता का नाश किया तो हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि पश्चिमोत्तर भारत में उसका शासन ३२५ बी. सी के लगभग आरम्भ हुआ। क्योंकि, जैसा हम ऊपर बता चुके है, एलेक्ज़ेन्डर के भारत से ३२५ बी सी में लौटने के साथ ही साथ यहां से ग्रीक सत्ता उठ गई। यदि हम इसके पश्चात् का, ३२२ बी. सी य अन्य कोई वर्ष, चन्द्रगुप्त के वहां पर शासन प्रारम्भ होने का समय निर्धारित करते है तो हमें यह कहना पड़ेगा कि पश्चिमोत्तर भारत में उसने ग्रीक सत्ता को उस समय नष्ट किया जबकि उसका वहां से करीब करीब नामोनिशान तक मिट गया था।

यह भी स्पष्ट है कि पश्चिमोत्तर भारत में अपना शासन जमाने के बाद ही उसने मगध पर धावा किया। इसका प्रमाण कि उसका मगध का धावा उसके पश्चिमोत्तर भारत में अपनी शक्ति सगठन करने के पश्चात् हुआ था मुद्राराक्षस से भी मिलता है। हमको यह मालूम ही है और पिछले एक अध्याय में हम इस बात की चर्चा कर आये हैं कि मुद्राराक्षस के अनुसार जिस सेना ने चन्द्रगुप्त के साथ मगध पर धावा किया था वह सब ही पश्चिमोत्तर भारत और मध्य एशिया की थी। हम विन्सेन्ट स्मिथ और कुछ अन्य विद्वानों के इस मत को नहीं मान सकते की ग्रीक सत्ता को पश्चिमोत्तर भारत से नष्ट करने क पहिले चन्द्रगुप्त ने मगध पर विजय प्राप्त कर ली थी। यह मत मुद्राराक्षस में सुरक्षित और अन्य ऐतिहासिक तथ्यों के बिलकुल विरुद्ध है।

चन्द्रगुप्त के विषय में जो प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री मिलती है उसके आधार पर यह कहना कठिन होगा कि पश्चिमोत्तर में ३२५ बी. सी. में अपने उत्थान के कितने समय बाद चन्द्रगुप्त ने मगध को जीता। पर अनुमान किया जा सकता है कि पश्चिमोत्तर में अपनी शक्ति को संगठन करने के लिये उसको कुछ समय लग गया होगा और उसके पश्चात् ही वह पूर्वीय भारत को विजय करने निकला होगा। पर उसके पश्चिमोत्तर में उत्थान और उसकी मगध की विजय के समय का अन्तर अधिक न होगा, क्योंकि जैसाकि हमको प्राचीन योरोपीय ऐतिहासिकों से मालूम है एलेक्ज़ेन्डर के आक्रमण के समय चन्द्रगुप्त अपनी युवावस्था में था, इसके पश्चात् मुद्राराक्षस के अनुसार मगध की विजय के समय पर भी वह युवक ही था।

अध्याय १८

चन्द्रगुप्त के महान् गुरु और राजमन्त्री विष्णुगुप्त कौटिल्य अथवा चाणक्य पर कुछ नवीन प्रकाश।

चन्द्रगुप्त न तो नन्द वंश से ही था और न वह मगध ही का निवासी था। वह वास्तव में गान्धार देश का निवासी था और उसके द्वारा स्थापित साम्राज्य के श्रीगणेश का प्रारम्भिक स्थान भी पश्चिमोत्तर भारत था। पश्चिमोत्तर भारत और पंजाब से ग्रीक सत्ता को पूर्णरूप से नष्ट करने के बाद ही उसने मगध पर हमला किया और नन्दों का उन्मूलन कर पूर्वीय भारत को अपने साम्राज्य में शामिल किया। उस समय की घटनाओं का यह नवीन रूप चाणक्य के व्यक्तित्व तथा उसकी कीर्तियों पर नवीन प्रकाश डालता है। हमें बौद्ध ग्रंथों से यह ज्ञात है कि चन्द्रगुप्त के समान चाणक्य भी पश्चिमोत्तर भारत का निवासी था। महावंश टीका के अनुसार वह तक्षशिला निवासी ब्राह्मण था। बहुत सम्भव है कि चन्द्रगुप्त ने युवराज की हैसियत से अपनी प्रारम्भिक शिक्षा तक्षशिला के महान् विश्वविद्यालय में चाणक्य के हाथों ही प्राप्त की हो। मुद्राराक्षस नाटक के भी प्रत्येक स्थल से चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त का परस्पर बहुत घनिष्ट

सम्बन्ध अभिव्यक्त होता है, तथा यह भी अभिव्यंजित होता है कि वे दोनो एक दूसरे की प्रतिभा के कायल थे। ये बातें दोनों में दीर्घ कालीन सम्पर्क के बिना सम्भव नहीं हो सकती थीं[1]।

पश्चिमोत्तर भारत का निवासी होने के कारण चाणक्य ने एलेक्ज़ेन्डर के आक्रमण के समय विभक्त देश पर सम्भावित संकटों का अनुभव किया। उसने अवश्य ही यह देखा कि उपयुक्त प्रकार से सुसंगठित तथा निकटरूप से एक राष्ट्र में सम्बद्ध भारत ही एलेक्ज़ेन्डर के समान विदेशी आक्रमण का सफलतापूर्वक प्रतिरोध कर सकता था। इतिहासकारों ने यह ठीक ही अनुमान किया है कि "ऐसा प्रतीत होता है कि पंजाब के ब्राह्मण समाज में जो यवनों के विरुद्ध प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई उसी के कारण चन्द्रगुप्त सम्मिलित भारत के सिंहासन पर आसीन हुआ"[2]। चाणक्य तक्षशिला का निवासी था और भारतीय साहित्यिक परम्परा के अनुसार वह चन्द्रगुप्त से बहुत ही निकटरूप से

(१) नाटक के निम्न उद्धरण से यह स्पष्ट अभिव्यक्त हो जाता है कि चाणक्य चन्द्रगुप्त का गुरू था, और इससे यह भी स्पष्ट होता है कि इन दोनों में कितना घनिष्ट सम्बन्ध था।

चन्द्रगुप्त —आर्याज्ञयैव मम लङ्घितगौरवस्य
बुद्धिः प्रवेष्टुमवनेर्विवरं प्रवृत्ता।
ये सत्यमेव न गुरुं प्रतिमानयन्ति
तेषां कथं नु हृदयं न भिनत्ति लज्जा ॥ ३३ ॥
(अंक ३)

(२) Cambridge Ancient History पुस्तक ४ पृ. ४१३.

सम्बद्ध था, इन तथ्यों कि दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि जो ब्राह्मण विद्रोह यवनों के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ उसका पूरक और नेता चाणक्य ही था। उस समय जो उसने एक शक्तिशाली, सुसगठित तथा अखण्ड भारतीय साम्राज्य के स्थापित करने की धारणा की वह थोड़े समय के अन्दर ही पूर्ण हुई। विन्सेन्ट स्मिथ ने ठीक ही लिखा है कि "भारतीय साम्राज्य, जिसका विस्तार अरब सागर से बगाल की खाड़ी तक हो और जिस में लगभग समस्त भारत और अफग़निस्तान भी सम्मिलित हों, की धारणा चन्द्रगुप्त और उसके मन्त्री के हृदयों में जागृत हुई, उसे उन दोनों ने चौबीस वर्ष के अल्प काल में पूर्ण कर डाली। ससार के इतिहास में इतने महान् राजनैतिक उद्योगों के उदाहरण बहुत ही कम मिलेंगे। केवल साम्राज्य का निर्माण ही नहीं कर दिया गया था प्रत्युत वह पूर्णरूप से व्यवस्थित था। पाटलीपुत्र से जारी होने वाली सम्राट् की आज्ञाओं का सिन्ध नद के तीरवर्ती प्रदेशों तथा अरब सागर के तट तक बिना उल्लघन पालन होता था। भारत के प्रथम सम्राट् का विशाल साम्राज्य इसी सुसगठित दशा में उसके पुत्र तथा पौत्र को भी प्राप्त हुआ"[१]।

विदित होता है कि इस विशाल साम्राज्य के स्थापित करते समय बिल्कुल आदि से चाणक्य चन्द्रगुप्त के साथ था। उस साम्राज्य के निर्माण का प्रारम्भ पश्चिमोत्तर भारत से हुआ था और उस साम्राज्य

(१) Asoka पृ १०४.

के अन्तर्गत लगभग समस्त भारत, अफ़ग़ानिस्थान और मध्य एशिया थे। चाणक्य के राजनैतिक जीवन का अन्तिम कृत्य सम्भवतः मगध को विजय कर चन्द्रगुप्त के साम्राज्य में सम्मिलित करने में सहायता करना रहा होगा। इसके पश्चात् जैसा कि मुद्राराक्षस से पता चलता है उसने मन्त्री-पद का त्याग कर दिया।

चाणक्य —तपोवनं यामि विहाय मौर्यम्
त्वां चाधिकारेष्वधिकृत्य मुख्यम्।
त्वयि स्थिते वाक्यपतिवरसुबुद्धौ
भुनक्तु गामिन्द्र इवैष चन्द्र ॥ १६॥ (अंक ७)

यदि मुद्राराक्षस नाटक में उपर्युक्त ऐतिहासिक परम्परा का प्रतिपादन हुआ है तो नन्द के लोकप्रिय मन्त्री राक्षस पर चाणक्य का विजय प्राप्त करना उसकी नीति का अति कुशल कार्य था। इस से नवीन मौर्य साम्राज्य के प्रति पूर्वीय भारत में जो कुछ भी विरोध रह गया था वह पूर्णरूपेण दब गया। मगध में चन्द्रगुप्त की स्थिति सुरक्षित हो गयी। मुद्राराक्षस नाटक से न केवल उक्त तथ्य पर ही प्रकाश पड़ता है, प्रत्युत यह भी अभिव्यक्त हो जाता है कि काश्मीर, सिन्ध तथा अन्य पश्चिमी राज्यों की सहायता से राक्षस और मलयकेतु ने चन्द्रगुप्त के विरुद्ध जो विरोध खड़ा किया था वह प्रतिफलित होने से पूर्व ही किस प्रकार दमन हो गया। इस से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मगध के जीतने के साथ साथ भारत के बहुत बड़े भाग पर चन्द्रगुप्त का अखण्ड अधिकार स्थापित हो गया। जब चाणक्य ने यह देख

लिया कि महान् चन्द्रगुप्त सम्मिलित भारत के सिंहासन पर दृढता-पूर्वक आसीन हो गया है, तब ही उसने मन्त्री पद त्याग कर सम्भवतः अपनी प्रखर बुद्धि को और भी महत्वपूर्ण सामाजिक तथा धार्मिक समस्याओं के हल करने में लगाया जो उसकी प्रतिमा की सहायता से चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित विशाल साम्राज्य के सन्मुख उपस्थित थीं। राजनीति पर उसका महान् और अमिट ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' सम्भवतः मगध पर विजय प्राप्त करने के शीघ्र पश्चात् ही लिखा गया था।

इस प्रकार चाणक्य भारत में उत्पन्न दृढ, निस्पृह और निस्वार्थ महान् व्यक्तियों में से एक था। उसके लिये यह कहना कि वह चन्द्रगुप्त और नन्दों के कौटुम्बिक झगड़े में लिप्त था बहुत ही खेदपूर्ण है। यदि उसके द्वारा इतने बड़े जागड़वाल के खड़े करने और रक्त बहाने का कारण केवल नन्द राजा द्वारा, या अन्य कथाओं के अनुसार नन्द की सेविका द्वारा,[४] उसका अपमान माना जाय तो हम उसे अवश्य ही बहुत ही नीच और प्रतिकारी व्यक्ति के रूप में देखते हैं। परन्तु चाणक्य द्वारा नन्दों के विनाश के कारण और ही मालूम होते हैं। मुद्राराक्षस के निम्न प्रकरण से यह उपयुक्त ही ज्ञात होता है कि चाणक्य ने नन्दों का उन्मूलन इस कारण किया कि वह राजोचित कर्तव्यों से विमुख थे।

नन्दैर्विमुक्तमनपेक्षितराजवृत्ते
अध्यासितं च वृषलेन वृषेण राज्ञाम्।

(४) जैसा कि हेमचन्द्र के स्थवीरावली चरित्र में।

सिंहासन सदशपार्थिवमत्कृतं च
प्रीतिं त्रयस्त्रिगुणयन्ति गुणा ममैते ॥ ३ ॥ (अंक ३)

पौराणिक परम्परा में भी नन्द राजाओं के प्रति घृणित भावों की अभिव्यक्ति हुई है। ग्रीक ऐतिहासिकों ने भी एलेक्ज़ेन्डर के आक्रमण के समय के मगध शासक की अत्यन्त लोक-अप्रियता का उल्लेख किया है। उनके अनुसार वह आचरणहीन एक नाई का पुत्र था। उसने मगध का सिंहासन अपने पूर्वाधिकारी का बध कर हथिया लिया था और पटरानी को भी भ्रष्ट किया था। जयसवाल ने सम्भवतः यह ठीक ही निष्कर्ष निकाला है कि "एलेक्ज़ेन्डर के आक्रमण का मुक़ाबिला करते समय गान्धार प्रजातन्त्रों ने मगध की सहायता मांगी होगी। परन्तु वहां से कोई सहायता न मिली"। इस प्रकार चाणक्य ने यह अनुभव किया कि भारत की रक्षा और उस में एक सम्मिलित साम्राज्य स्थापित होने के लिये अन्य बहुत से राजाओं और प्रजातन्त्रों की तरह नन्द राज्य का अन्त भी आवश्यक था।

यह चाणक्य की ही शासन प्रबन्धकारिणी प्रतिमा थी, जिसने लगभग समस्त भारत और उसके परे के पश्चिमी प्रदेशों पर शक्तिशाली और अत्यन्त सुसंगठित मौर्य साम्राज्य स्थापित किया। विंसेन्ट स्मिथ ने ठीक ही लिखा है कि "अकबर के साम्राज्य की शासन व्यवस्था उस उत्कृष्टता को नहीं पहुंची जिसको कि अट्ठारह या उन्नीस शताब्दियां पूर्व मौर्य साम्राज्य की पहुंच

गयी थी ''[५] । यदि हम इस बात को स्मर्ण रखें कि चाणक्य की बुद्धि की सहायता से ही उस राजनैतिक सूत्र का सूत्रपात हुआ जिसके कारण अशोक के समय में प्रथमवार भारतवर्ष संसार को सफलतापूर्वक शान्ति, प्रेम और भ्रातृभाव का सन्देश सुनाने के योग्य बना तो हम उपयुक्तरूप से चाणक्य को केवल भारत के इतिहास का ही नहीं प्रत्युत संसार के इतिहास का एक बड़े महत्वपूर्ण युग का प्रवर्तक कह सकते हैं।

---

(५). Akbar, the Great Moghul. पृ. १५६,

अध्याय १६

कौटल्य का अर्थशास्त्र ।

भारत के प्राचीन संस्कृत साहित्य में कौटल्य के अर्थशास्त्र का एक बहुत अपूर्व स्थान है । भारत का प्राचीन साहित्य धार्मिक पुस्तकों से भरा हुआ है, और अध्यात्म सम्बन्धी तो बारीक से बारीक प्रश्नों पर अच्छा विचार किया गया है । उपनिषद् आदि का, जो भारत के प्राचीन आर्य समुदाय की प्रबल मानसिक शक्ति और सत्य के खोज की उनकी आकांक्षा का पता देते हैं, आज भी संसार के साहित्य में उच्च स्थान है । परन्तु भारत के प्राचीन साहित्य में राष्ट्र निर्माण और समाज संगठन आदि विषयों पर ग्रन्थों का बहुत कुछ अभाव है । केवल कौटल्य का अर्थशास्त्र अब तक एक ऐसा ग्रन्थ मिला है जिसमें वैज्ञानिक दृष्टि से पूरे तौर पर इन विषयों पर ध्यान दिया गया हो। पर कौटल्य ने अपने अर्थशास्त्र में स्थान स्थान पर जिस प्रकार मनु, बृहस्पति, औशनस भारद्वाज, विशालक्ष, पराशर, पिशुन, कौणपदन्त, वातव्याधि, बाहुदन्तीपुत्र आदि आचार्यों के भिन्न भिन्न विषयों पर मत की तुलना की है उससे स्पष्ट होना है कि राष्ट्र और समाज सम्बन्धी विषयों पर भी प्राचीन भारत में अच्छी तरह विचार होता था और इनके अध्ययन की भी परम्पराएं थीं ।

चाणक्य का ही दूसरा नाम विष्णुगुप्त कौटल्य था, और कौटल्य ने मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के साम्राज्य के शासन विधान ही के लिये अपने अपूर्व ग्रन्थ अर्थशास्त्र की रचना की। इस ग्रन्थ में राष्ट्र और समाज सम्बन्धी बहुत सी भिन्न भिन्न बातों पर विचार किया गया है जिनसे ऐसा प्रकट होता है कि यह ग्रन्थ इन विषयों का एक विज्ञान कोष है। पर विचार धारा और लेखन-शैली की ऐकता से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह सारा ग्रन्थ एक ही व्यक्ति का लिखा हुआ है। अर्थशास्त्र का मुख्य ध्येय आपस में लड़ते हुए छोटे छोटे राष्ट्रों को एक विशाल और शक्तिशाली साम्राज्य में परिणत कर उसके ऊपर ठीक ठीक शासन व्यवस्था करना है। जर्मन विद्वान् जेकोबी ने ठीक ही लिखा है कि "यह ग्रन्थ सम्राट् चन्द्रगुप्त या देश को दिया हुआ अधिकार-पत्र है, जिस कारण यह विख्यात रोमन सम्राट् जस्टिनियन से भी बड़ा समझा जा सकता है"।

अर्थशास्त्र चौदह भागों में विभाजित है। प्रथम भाग में पहिले तो राजकुमारों की शिक्षा प्रणाली का वर्णन है, पुनः राजा तथा मन्त्रियों के कर्त्तव्यों का। दूसरे भाग में शासन सम्बन्धी भिन्न भिन्न महकमें और उनके अध्यक्षों के कर्त्तव्यों का वर्णन है। इनका सविस्तार हम अगले अध्याय में ज़िक्र करेंगे। तीसरे भाग में देश में न्याय व्यवस्था पर विचार किया गया है, इस पर भी कुछ ज़िक्र हम आगे चलकर करेंगे। चौथे भाग में राष्ट्र और समाज सम्बन्धी कण्टकों के दूर करने पर विचार किया

गया है। पाचवें भाग में राजकर्मचारियो के वेतन आदि पर विचार किया गया है। छटवें भाग में राष्ट्र की शक्ति किन बातों पर निर्भर है, इस विषय पर विचार किया गया है। सातवें भाग में अन्तर्राष्ट्रीय नीति और किस प्रकार सम्राट् नीति द्वारा अपने साम्राज्य और शक्ति को बढा सकता है, इस विषय पर विचार किया गया है। आठवें भाग में राष्ट्र के ऊपर आपत्तियों और उनके निर्वाण करने पर विचार किया गया है। नवें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें भाग में संग्राम, नये प्रदेशों का विजय करना और उनमें शान्ति और सुशासन व्यवस्था करने पर विचार किया गया है। चौदहवें भाग में जादूटोनों द्वारा शत्रु के विनाश करने की बहुत सी विधियें बताई गई हैं, हमारे विचार में यह भाग कौटल्य के अर्थशास्त्र में बहुत बाद में जोड दिया गया है। इस विषय पर हम नीचे चलकर विचार करेंगें।

ऐसा मालूम होता है कि कौटल्य ने अपने अर्थशास्त्र की रचना उस समय के लगभग की होगी जब कि पश्चिमोत्तर भारत से चलकर चन्द्रगुप्त ने मगध पर विजय प्राप्त की। मुद्राराक्षस से हम को यह मालूम ही है कि चन्द्रगुप्त को मगध पर विजय प्राप्त करने में सहायता देने के और राक्षस को मन्त्रीपद पर स्थित करने के पश्चात् कौटल्य ने रोज़-मर्रा के राजकार्यों से अपना हाथ खींच लिया। सम्भवत उसके पश्चात् कुछ समय तक उसने अपनी प्रबल मानसिक शक्ति को विशाल मौर्य साम्राज्य के शासन चलाने के सहायतार्थ इस अपूर्व ग्रन्थ की रचना करने में लगाई। यदि चन्द्रगुप्त के विशाल साम्राज्य के अच्छी तरह स्थापित होने के बाद में यह

ग्रन्थ लिखा गया होता तो इसमें छोटे छोटे राज्यों और प्रजातन्त्रों के जोड़ने–तोड़ने के लिये कूट नीति पर इतना ज़ोर नहीं दिया जाता।

अब हम यहां संक्षेप में उन बातों पर विचार करेंगे जिन के कारण हम समझते हैं कि अर्थशास्त्र की चौदहवीं पुस्तक और उस ग्रन्थ के अन्य भागों में भी दो एक जगह पर दिये हुए जादू-टोने जो बताये गये हैं वह इस ग्रन्थ का असली भाग नहीं है परन्तु इस में बाद में जोड़े गये हैं[1]।

चाणक्य अथवा विष्णुगुप्त कौटल्य के जीवन के बारे में जो कुछ भी हमें थोड़ी बहुत ऐतिहासिक सामग्री मिलती है उसपर ध्यानपूर्वक विचार करने से ऐसा मालूम होता है कि वह यथार्थवादी था और उसका दृष्टिकोण सदैव विवेचनापूर्ण रहता था। मुद्राराक्षस से स्पष्ट होता है कि वह दैवगति पर कोई बात नहीं छोड़ता था। प्रत्येक बात पर अच्छी तरह विचार करलेने पर ही वह उसे कार्यरूप में परिणत करता था। मुद्राराक्षस के निम्न कथन से मालूम होता है कि नन्दों को भूमिसात करने और चन्द्रगुप्त के लिये मगध के सिंहासन को सुरक्षित बनाने के लिये उसे अपनी असाधारण बुद्धि पर कितना आश्रित रहना पड़ा था।

> एका केवलमर्थसाधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका
> नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम ॥ अंक १

---

(१) इस विषय पर सविस्तार हमने अपने निम्न लेख में विचार किया है।
"Spurious in Kautalya's Arthasastra" Eartern and Indian Studies. पृ० २५०

सारे मुद्राराक्षस में यही अभिव्यक्त किया गया है कि अपनी नीति कुशल से ही उसने मगध पर मौर्य साम्राज्य की स्थापना की, न कि जादू-टोने से। चौदहवीं पुस्तक और दो एक अन्य स्थानों को छोड़कर सारे ही अर्थशास्त्र को ध्यानपूर्वक पढ़ने से भी विष्णुगुप्त का असली रूप बिल्कुल वैसा ही मिलता है जैसा कि उक्त नाटक में व्यक्त हुआ है। इस में भी अपने दृष्टिकोण में वह पूर्णरूप से विवेचनशील और यथार्थवादी ही प्रकट होता है। अर्थशास्त्र के प्रारम्भिक अध्याय में उसके विज्ञानों के विभाजन से ही उसकी विवेचनशीलता का पता चलता है। उसने सबसे प्रथम स्थान और सब से अधिक महत्व आन्वीक्षिकी को दिया है, जिसके अन्तर्गत सांख्य, योग और लोकायत हैं। राजसत्ता के सिद्धान्त में भी उसकी इस विवेचनशीलता की अभिव्यक्ति होती है। उसके अनुसार राजसत्ता सैन्य शक्ति पर निर्भर है, और उसका अन्तिम आधार प्रजा की उन्नति और सम्पन्नता है, और शासक द्वारा अनवरत परिश्रम से ही यह सब साध्य हो सकता है। अर्थशास्त्र का रचयिता शकुन अपशकुन में विश्वास नहीं करता था। उसने ग्रहों से अच्छे बुरे फल निकालने की प्रथा का बड़े ज़ोरों से विरोध किया है,

नक्षत्रमतिपृच्छन्तं बालमर्थोऽतिवर्तते।
अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यन्ति तारकाः॥

अर्थशास्त्र पु ९ अ. ४.

तेरहवीं पुस्तक में अर्थशास्त्र के रचयिता ने बताया है कि शत्रुदल जो नागों और भूत-परेतों में विश्वास रखते थे उनके

इन अन्ध विश्वासों का गुप्तचरों द्वारा विजेता सम्राट् के शौर्य की अभिवृद्धि के लिये किस प्रकार प्रयोग किया जा सकता था। इस से यह स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र का प्रणेता स्वयं इन अलौकिक घटनाओं में विश्वास नहीं करता था, परन्तु वह यह अच्छी तरह जानता था कि यह ऐसी चालें हैं जो उन लोगों पर चलाई जा सकती हैं जो मूर्खतावश इन में विश्वास रखते हैं।

यह उपयुक्त प्रतीत नहीं होता कि एक व्यक्ति, जो अपने दृष्टिकोण में इतना अधिक यथार्थवादी है और जो अन्ध-विश्वासों का प्रत्यक्षरूप से विरोधी तथा निंदक है, अलौकिक तथा अद्भुत बातों की सार्थकता में विश्वास कर सकता है और उनके अनुष्ठान की सलाह दे सकता है, जैसा कि अर्थशास्त्र के केवल दो एक स्थानों पर किया गया है। उदाहरणार्थ राष्ट्रीय विपत्तियों के मिटाने के वैज्ञानिक उपायों के साथ साथ निम्न बातें भी घुसेड़ दी गयी हैं। असाध्य रोगों के प्रतिकूल किसी शव के जलते समय कब्रिस्तान में ले जाकर गाय का दूध काढ़ना। चूहों के प्रतिकूल पूर्णिमा के दिन चूहों का पूजन करना। सांपों के विरुद्ध पूर्णिमा के दिन सांपों का पूजन करना। चीतों तथा अन्य हिंसक जन्तुओं के विरुद्ध पूर्णिमा के दिन पर्वतों का पूजन करना। दानवों के विरुद्ध पूर्णिमा के दिन चैत्य का पूजन करना और खुले दालान में चढ़ावा, जैसे कि एक छत्र, हाथ का चित्र और थोड़ासा बकरे का मांस, रखना। दानवों की ओर से समस्त प्रकार की सम्भावित आशंकाओं के लिये जादूपूर्ण शब्द

"हम तुम्हें पके हुए चावलों की भेंट करते हैं" आदि का अनुष्ठान करना[२]।

चौदहवीं पुस्तक में जो अनुष्ठान बताये गये हैं वे इन से भी अधिक विचित्र हैं। हम इन में से कुछ का वर्णन नीचे देते हैं।

"मैं अग्नि तथा दसों दिशाओं की देवियों की शरण लेता हूं। इससे सारे विघ्नों का अन्त हो जाय, और समस्त बातें मेरी इच्छानुसार मेरे अनुकूल हों।

"चार रात्रियों के व्रत के पश्चात् अमावास्या के दिन मनुष्य की हड्डियों से बैल का आकार बनाकर उक्त मन्त्र का उच्चारण करते हुए जो पूजन करे, तो इस पर उपासक के सन्मुख दो बैलों से जुती गाड़ी आयेगी। वह उसमें बैठकर आकाश की यात्रा कर सकता है और सूर्यलोक तथा अन्य नक्षत्रों में पहुंच सकता है।

"ओ, चाण्डाली, कुम्बी, तुम्बा, कटुका तथा सरीघा तेरे भी स्त्रियों के समान योनि होती है, अत तेरी वन्दना करता हूं। जब इस मन्त्र का उच्चारण किया जायगा तो अन्दर के लोग सो जायगे।

"यदि राजवृक्ष की लकड़ी पर शत्रु का चित्र काढ़ अमावास्या के दिन भूरे रंग की गाय का किसी अस्त्र से वध कर उसके जिगर की मज्जा को उस चित्र पर लगाया जाय तो शत्रु अन्धा हो जायगा।

---

(२) अर्थशास्त्र पु. ४ अ ३.

"चार रात्रियों के व्रत के पश्चात् अमावास्या के दिन पशु की बलि चढ़ाये और कहीं से फांसी पर चढ़े मनुष्य की हड्डी के बने कील के समान छोटे छोटे थोड़े से टुकड़े प्राप्त करे, इन में से एक टुकड़ा शत्रु के मल या मूत्र में रखने से उस शत्रु का शरीर फूल जायेगा। और यदि वह टुकड़ा शत्रु के पैरों के नीचे या उसकी बैठने की जगह के नीचे गाड़ दिया जाय तो शत्रु का क्षयरोग से अन्त हो जायेगा। जब वह टुकड़ा शत्रु की दूकान, खेत या घर में गाढ़ा जायगा तो उसकी जीविका की हानि होगी।

"छोटी उंगली के नाखून, मधु, बन्दर के बाल, और मनुष्य की हड्डी किसी मृतक के वस्त्र में लपेट कर मकान में गाढ़ी जाय, या कोई मनुष्य उन पर हो कर चले, तो डेढ़ मास के अन्दर उसका, उसकी पत्नी, तथा सन्तान व सम्पत्ति का नाश अवश्य होगा।

"रात्रि को जब कोई बड़ा जलूस निकल रहा हो तब मृतक गाय के थन काट कर उन्हें वहीं मशाल की लपट में जलाए। इन जले हुए थनों तथा बैल के मूत्र को मिला कर एक लेप तैयार करे, और एक नया कटोरा लेकर उसके अन्दर अच्छी तरह इस लेप को चुपड़ दे। इस कटोरे को लेकर ग्राम के चारों ओर दक्षिण से उत्तर की ओर चक्कर लगाये, तब इसके पश्चात् जब वह कटोरा नीचे रखा जायगा तो समस्त ग्राम की गायों का जितना भी मक्खन होगा अपने आप उस कटोरे में एकत्रित हो जायगा।

" पुष्य नक्षत्र के उदय होने पर अमावास्या की रात्रि को लोहे की एक मुद्रा तपा कर उसे कुत्ती की योनि के अन्दर डाल दे और उसे तब उठाये जब वह आगी गिर पड़े, जब इस मुद्रा को हाथ में ले फलों को मांगा जायगा तो वे स्वयं आकर एकत्रित हो जायंगे " ।

उक्त तथा ऐसे ही अन्य जादू-टोने, जिनका कि अर्थशास्त्र में केवल दो एक उक्त स्थलों पर जिक्र किया गया है, प्रक्षेप से प्रतीत होते हैं। इन स्थलों को छोड़ कर अवशिष्ट अर्थशास्त्र तथा मुद्राराक्षस नाटक से जैसा विष्णुगुप्त का उपयुक्त चरित्र-चित्रण होता है, यह अनुष्ठान उसके नितान्त प्रतिकूल हैं। संभवतः भारत में तंत्रवाद फैलने के समय यह कौटल्य के अर्थशास्त्र में भी जोड़ दिये गये हों।

इसके अतिरिक्त समस्त चौदहवीं पुस्तक य कम से कम उसका एक बहुत बड़ा भाग हमको बाद का जोड़ा हुआ मालूम होता है, क्योंकि राजनीति सम्बन्धी सभी बातों पर विचार तेरहवीं और उसके पीछे की पुस्तोको में समाप्त हो गया है। इतना ही नहीं प्रत्युत तेरहवीं पुस्तक के अन्त में यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि विजित प्रदेश को किस प्रकार संगठित कर उस पर सुख और शान्ति स्थापित की जाय। वहीं पर उन समस्त विधियों का भी पूर्ण विवरण दिया गया है जो कि बाहरी और भीतरी शत्रुओ के साथ व्यवहार में लाई जायें। अर्थशास्त्र के समपूर्ण होने में चौदहवीं पुस्तक की अवश्यकता नहीं। जादू-टोने पर कभी किसी साम्राज्य का निर्माण नहीं हुआ।

उक्त कुत्सित तथा मूर्खतापूर्ण अनुष्ठानों की प्रक्रियाओं को बरबस विष्णुगुप्त पर आरोपित किया गया है। इस प्रकार भारतवर्ष के इस महान् व्यक्ति के साथ अनिर्वचनीय अन्याय हुआ है। अर्थशास्त्र से उक्त गर्हित और असंगत बातें निकालने पर हम जर्मन विद्वान् मेलौर के इस कथन से अवश्य पूर्णरूपेण सहमत होते हैं कि "अर्थशास्त्र एक प्रतिभावान मस्तिष्क की उपज है, जो न कभी लक्ष्य भ्रष्ट हो सकता है और न शृंखल ही, और यह ग्रन्थ राजनैतिक विचार धारा की पराकाष्ठा को पहुंचा दिया गया है"।

जब हम विष्णुगुप्त कौटल्य की विद्वत्ता, उसकी प्रतिभाशाली बुद्धि, उसकी निस्वार्थता, विशाल मौर्य साम्राज्य को स्थापित कर समस्त भारत को एक महान् राष्ट्र बनाने में उसकी चन्द्रगुप्त को पूर्ण सहायता और अर्थशास्त्र जैसे अमूल्य ग्रन्थ की उसकी रचना, इन सब बातों को साथ साथ ध्यान में रखते हैं, तो सुगमतापूर्वक हमारी समझ में आ जाता है कि क्यों सैकड़ों वर्षों बाद कामन्दक ने विष्णुगुप्त कौटल्य को प्राचीन बड़े बड़े ऋषियों की श्रेणी में रखा, उसके तेज को अग्नि के तेज के समान बताया और उसकी रचनात्मक बुद्धि की ब्रह्मा की बुद्धि से तुलना की,

वंशे विशालवंशानामृषीणामिव भूयसाम
अप्रतिग्राहकाणां यो बभूव भुवि विश्रुतः ॥
जातवेदाइवार्चिष्मान् वेदान् वेदाविदांवरः ।
योऽधीतवान् सुचतरश्चतुरोप्येकवेदवत् ॥
नीतिशास्त्रामृतं धीमानर्थशास्त्रमहोदधेः ।
समुद्दध्रे नमस्तस्मै विष्णुगुप्ताय वेधसे ॥

कामन्दकीय नीतिसार।

अध्याय १७

चन्द्रगुप्त के साम्राज्य की शासन व्यवस्था ।

चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित मौर्य साम्राज्य की शासन व्यवस्था का बहुत कुछ पता कौटल्य के अर्थशास्त्र और उसके समय में आये हुए यवन दूत मेगस्थनीज द्वारा लिखित उस समय के भारत सम्बन्धी वृत्तान्तों से, जो प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों की पुस्तकों मे सुरक्षित हैं, मिलता है। थोडा बहुत इसका अनुमान उसके पौत्र अशोक के शिलालेखों से भी किया जा सकता है। इन सबके आधार पर हमें उस समय के शासन सम्बन्धी निम्न मुख्य मुख्य बातों का ज्ञान होता है।

सम्राट् की सहायता के लिये एक मन्त्री परिषद था, जिसकी संख्या समय और देश के अनुसार बदलती रहती थी, परन्तु कौटल्य के अनुसार शासन सम्बन्धी गूढ बातों पर सम्राट चार व पाच मुख्य मुख्य मन्त्रियों से ही परामर्श करता था।

शासनप्रबंध के लिये कितने ही महकमें अलग अलग स्थापित कर दिये गये थे और हर एक महकमें का एक एक मुख्य अध्यक्ष रहता था, जिसकी सहायता के लिये, जैसा हमको ग्रीक वृत्तान्तों से पता चलता है, पाच सदस्यों की एक कमेटी रहती थी। हर एक महकमें की कारवाई पर बहुत कडी निगरानी

रखी जाती थी। ग़बन व लापरवाही से काम करने पर कड़ी सज़ा मिलती थी। बड़े से लेकर छोटे राजकर्मचारी को मुक़र्रिर वेतन मिलता था।

कौटल्य के अनुसार निम्नलिखित महकमें और उनके मुख्य अध्यक्षों के कर्तव्यों का पता चलता है।

(१) सन्निधाता, जिसका मुख्य कर्तव्य दुर्ग आदि बनवाना और शाही खज़ाने की देखरेख रखना था।

(२) समाहर्ता, जिसका मुख्य काम भिन्न भिन्न प्रकार के करों को संग्रह करने का था।

(३) अक्षपटलाध्यक्ष, जिसका कर्तव्य राजकोष से जो कुछ व्यय हो उसका ठीक हिसाब रखना था।

(४) आकराध्यक्ष, जिसका काम स्वर्ण, चांदी, लोहा आदि की खानों को चलाना और खनिज पदार्थों की देख रेख रखना और जनता को उनके बेचने का प्रबन्ध करना था। यह बात ध्यान देने योग्य है कि मौर्य काल में प्रमुख खनिज पदार्थों की पैदावार का काम स्वयं राज्य की ओर से होता था।

(५) सुवर्णाध्यक्ष, जिसका काम सोने चांदी की ठीक परख और सोने चांदी के ठीक ठीक सिक्के बनवाने का था।

(६) पौतवाध्यक्ष, जिसका काम तोलने और नापने के पैमानों का ठीक ठीक निग्रह करना था।

(७) कोष्ठागाराध्यक्ष, जिसका काम कर में आई हुई वस्तुओं को ठीक ठीक रखना था। इनमें से आधी से अधिक

लोगों को दुष्काल के समय देनें के लिये अल्हेदा सुरक्षित रखी जाती थीं।

(८) पण्याध्यक्ष, जिसका काम सर्व व्यापार की देखरेख रखना था।

(९) कुप्याध्यक्ष, जिसका कर्तव्य वन और जंगल आदि को सुरक्षित रखना और इस प्रकार से उनको काम में लाना था जिस से कि उपजाऊ जंगल नष्ट न हो जायें।

(१०) आयुधागाराध्यक्ष, जिसके अधिकार में सर्व प्रकार के सांग्रामिक अस्त्र--शस्त्र बनवाने का काम था।

(११) सूत्राध्यक्ष, जिसका काम कपास आदि के कातने, बुनने और अन्य वैसी ही दस्तकारियो की देख रेख था।

(१२) सीताध्यक्ष, जिसके हाथ में खेती वाड़ी की देख-रेख, झील, कुए, तालावों, नहरों आदिका खुदवाना और उन से ठीक समय पर पानी दिलवाने का था।

(१३) सुराध्यक्ष, जो सुरा आदि बनने और उसकी बिकरी की देखरेख रखता था। सुरा नाप कर बहुत कम मिक़दार में लोगों को मिलती थी।

(१४) सूनाध्यक्ष, जिसका कर्तव्य पालतू पशुओं और पक्षियों आदि की देख रेख रखना था।

(१५) गणिकाध्यक्ष, जिसका काम गणिकाओं के बारे में व्यवस्था और उनकी रक्षा करना था।

(१६) नावध्यक्ष, जिसके सुपुर्द समुद्र, नदियों, झीलों आदि में जहाज़ और नाव चलाने के कार्य की देखरेख और व्यवस्था करना था।

इनके अतिरिक्त (१७) गोध्यक्ष (१८) अश्वाध्यक्ष (१९) हस्त्यध्यक्ष (२०) रथाध्यक्ष के भी पृथक पृथक महकमें थे।

(२१) फौजी विभाग का अध्यक्ष सेनापति था। सेना के उस समय चार अंग होते थे, हाथी की सेना, घोड़े की सेना, रथों की सेना और पैदल सेना। सेनापति की मातहती में इन चारों के अल्हैदा अल्हैदा अध्यक्ष रहते थे।

(२२) इस के अतिरिक्त मौर्य शासन का एक विदेशी विभाग भी था, जिसका कर्तव्य देश के बाहर जाने के लिये परवानगी देना और बाहर के आये हुए लोगों की देख रेख रखना और उनकी खातिर-तवाजह करना था।

शासन विधान के लिये विशाल मौर्य साम्राज्य चार पांच बड़े बड़े खण्डों में बांट दिया गया था। इस हर एक खण्ड के संरक्षण के लिये कोई सम्राट्-वंशीय राजपुत्र प्रतिनिधिशासक (वाइसराय) नियुक्त किया जाता था। पूर्वीय भारत का शासन तो स्वयं राजधानी पाटलीपुत्र से ही होता था। इसके अतिरिक्त उत्तरीय भारत में कौशाम्बी और तक्षशिला दो प्रतिनिधिशासक केंद्र थे। तक्षशिला के अन्तर्गत समस्त पंजाब, गान्धार और मध्य एशिया के प्रान्त थे। खोतान का इलाका भी सम्भवतः इसही के अन्दर रहा हो। मध्य भारत में उज्जैन मुख्य प्रतिनिधि शासक केन्द्र था, और दक्षिण भारत में मईसूर। इसके अतिरिक्त बहुत से स्थानीय राजाओं को, जिन्होंने मौर्य सम्राट् का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया था, अपने अपने राज्य की व्यवस्था करने के लिये बहुत कुछ

स्वतंत्र छोड़ दिया गया था। समय समय पर स्वयं सम्राट् और उसके भेजे हुए प्रतिनिधि इन भिन्न भिन्न प्रान्तों का दौरा भी करते थे।

प्रान्तीय शासन विधि भी ऊपर ही के समान थी। प्रतिनिधि–शासक राजकुमार की सहायता के लिये भी एक मन्त्री परिषद् होता था, और शासन के लिये ऊपर के समान ही भिन्न भिन्न महकमें प्रान्तों में भी स्थापित किये जाते थे।

स्थानीय शासन के लिये एक प्रान्तीय जनपद कितने ही भागों में विभाजित किया जाता था और हर एक भाग के ऊपर एक 'स्थानिक' नियुक्त किया जाता था। स्थानिक की देखरेख में लगभग ८०० ग्राम रहते थे। स्थानिक के नीचे पांच से लेकर दस ग्राम के ऊपर एक 'गोपा' मुकर्रिर किया जाता था। गोपा का काम ग्रामो की हद का बांधना, खेतों का नम्बर देना और उनको उचितरूप से विभाजित करना, बगीचों, जंगलों, नहरों, चरागाहों, सड़कों, देवालयों और मुसाफिरों के पानी पीने और विश्राम करने के स्थानों की देख रेख करना था। गोपा का काम खेतादि की बिकरी का और कर आदि का खाता रखना भी था। इसके अतिरिक्त गोपा का प्रत्येक ग्राम के चारों वर्णों की, भिन्न भिन्न पेशेवालों की और मवेशियों की संख्या की सूची बनाने का काम भी था। गोपा का यह भी कर्तव्य था कि वह प्रत्येक गृहस्थ की रहने की व्यवस्था, उनकी आर्थिक दशा, उनके चरित्रादि पर अपनी निगाह रखे। गोपों के काम की देख–रेख स्थानिक करते थे। और गोपों और स्थानिकों के काम की देख-रेख

करने के लिये 'प्रदेष्टारा' नियुक्त किये जाते थे, जो निरन्तर दौरा करते रहते थे।

बड़े बड़े नगरों की व्यवस्था के लिये 'नागरक' नियुक्त किये जाते थे। नगर को भी शासन व्यवस्था के लिये चार हिस्सों में बांटा जाता था, और हर एक भाग के ऊपर एक 'स्थानिक' नियुक्त किया जाता था। दस, बीस व चालीस घरों के ऊपर, उनकी हैसियत के अनुसार, एक गोप नियुक्त किया जाता था, जो उन घरों के रहने वालों की जन संख्या, उनकी आर्थिक दशा आदि पर, बाहर से आने-जाने वालों पर, भीषण रोग से पीड़ित मनुष्यों की और चोरी, झगड़ों आदि की खबर रखता था।

'नागरक' का कर्तव्य था कि वह प्रति दिन जलाशयों को, सड़कों को, शहर की दीवारों और जेल आदि को स्वयं जाकर देखे।

नगर की अग्नि आदि से रक्षा करने का अच्छा प्रबन्ध किया जाता था। हर एक पुरुष को अपने घर में अग्नि बुझाने के लिये पानी के भरे घड़े और अन्य सामान रखना पड़ता था। उनके न रखने पर सज़ा मिलती थी। सड़कों पर और सरकारी बड़ी इमारतों के आस-पास भी हज़ारों की संख्या में पानी भरे घड़े रखे जाते थे। जानबूझकर किसी घर में आग लगानेवाले को मृत्यु की सज़ा मिलती थी।

नगर को साफ़ रखने पर भी बहुत ज़ोर दिया जाता था। गलियों और सड़कों पर कूड़ा व गंदा पानी फेंकने पर कड़ा जुर्माना होता था। सड़कों पर व मन्दिरों और अन्य यात्रा के स्थानों के

व जलाशयों के आस-पास मल-मूत्र फैंकने व शहर के किसी भाग में घोड़े, गधे, कुत्ते, बिल्ली व और किसी जानवर की लाश को फैंकने पर तो बहुत ही कड़ा जुर्माना होता था। मरे जानवरों की लाश और शहर की गंदगी को शहर से बाहर लेजाने के रास्ते नियुक्त कर दिये गये थे। उनके अतिरिक्त और रास्तों से वह नहीं लेजाये जा सकते थे। घरों को घिच-पिच बनाने की भी मनाई थी। इन सब बातों से मालूम होता है कि भारत में मौर्य समय के नगर बहुत ही स्वच्छ रहते होंगे।

मौर्य समय में न्याय शासन का भी अच्छा विधान था। छोटे और बड़े नगरों में और ज़िलों के अन्दर कितने ही स्थानों पर न्यायालय थे, जिन में तीन 'धर्मस्था' (जो धर्मशास्त्र से भिज्ञ रहते थे) और तीन शासन की ओर से नियुक्त 'अमात्य' मिलकर इन्साफ़ करते थे। प्रथम तो मुद्दई और मुद्दायले के बयान ठीक ठीक लिखे जाते थे। उनपर अच्छी तरह ध्यान करने के बाद गवाहों की पेशी होती थी, उनके भी बयान सावधानी से लिखे जाते थे। इन सबको ध्यान में रखते हुए इन्साफ़ किया जाता था। झूठी गवाही देन पर दण्ड मिलता था। धर्मशास्त्र, व्यवहार, पूर्व इतिहास और राज-आज्ञाओं के आधार पर न्याय होता था। मौर्य काल में न्याय पर बहुत ज़ोर दिया जाता था, जैसा कि कौटल्य ने अपने अर्थशास्त्र में लिखा है कि राज्य की नींव न्याय पर ही आधारित थी और न्याय के आगे क्या राजा का पुत्र क्या शत्रु सब एक समान थे।

दण्डो हि केवलो लोक पर चेम च रक्षति ।
राज्ञा पुत्रे च शत्रौ च यथादोष सम धृत ।
अनुशासद्धि धर्मेण व्यवहारेण सस्थया ।
न्यायेन च चतुर्थेन चतुरन्ता महीं जयेत् ॥

अर्थशास्त्र पु ३ अ १

जनता के सुख और उन्नति के निम्न साधनों की व्यवस्था करने का भार भी मौर्य शासन ने अपने ऊपर ले लिया था। खानों और जगलो की पैदावार का सग्रह करना और जनता को उसको ठीक ठीक दामपर बेचना, मवेशियों की नसल अच्छी बनाने के लिये पशुओं का रखना, वाणिज्य के लिये जल और पृथ्वी पर रास्ते और बाजार आदि का निर्माण करना, खेती के लिये नहरें, तालाब और कुए बनवाना, पुण्यस्थान और जगह जगह पर बाग बगीचे लगवाना, मनुष्य और पशुओं के लिये चिकित्सालाए स्थापित करना। यतीम बच्चों, बूढ़ों, रोग से पीड़ित मनुष्यों, नई माताओं और उनके बच्चों जिनका और कोई सहारा न हो की रक्षा और पालन करने का भार भी शासन के ऊपर था। यदि किसी के माल की चोरी हुई और कर्मचारी उसका पता न लगा सके तो राज-कोष से यह नुकसान पूरा किया जाता था। इन सब से प्रकट होता है कि मौर्य शासन ने अपने ऊपर कितनी जिम्मेदारी ले रखी थी।

ज्ञान के बढ़ाने और विद्या के प्रचार के भी मौर्य शासन ने कितने ही साधन किये थे। ग्रीक इतिहासकार स्ट्रेबो से हमें पता चलता है कि हर वर्ष के प्रारम्भिक दिन मौर्य सम्राट् विद्वानों की एक बड़ी परिषद करता था, जिसमें जिसने जो कुछ समाज और

राष्ट्र के फ़ायदे के लिये लिखा हो वह उसको इस परिषद के सामने पढ़ा करता था। जिनका काम अच्छा समझा जाता था उनको यथेष्ट पारितोषिक दिया जाता था।

मौर्य शासन की दो एक बातें विशेषकर ध्यान देने योग्य हैं, जैसे कि बालिग होने के पहिले कोई भी साधु य संन्यासी नहीं बन सकता था। और उसके पश्चात् भी जो बिना अपनी स्त्री और बच्चों के निर्वाह का ठीक ठीक प्रबन्ध किये ऐसा करता था उसको दण्ड मिलता था। अपने पड़ोस में आग लगने के समय जो आदमी आग बुझाने में सहायता नहीं देता था उसको कड़ा दण्ड मिलता था। किसी स्थान पर नहर, तालाब आदि के, जो सबके लाभ के लिये हों, बनने के समय वहां पर रहनेवाले हर एक पुरुष को मजबूरन उसके लिये किसी न किसी प्रकार की सहायता देनी पड़ती थी।

यह तो रही देश के अन्दर की शासन व्यवस्था, देश को बाहरी आक्रमणों से रक्षा करने के लिये, जैसा हम ऊपर लिख आये हैं, चार प्रकार की, हाथी, घोड़े, रथ और पैदल, सेना रहती थी। प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त की सेना की संख्या लगभग ६००००० के थी। चन्द्रगुप्त की शक्ति का वैभव दूर के देशों तक फैला हुआ था। केवल सीरीया के यवन सम्राट् सेलूकस ने एक दफ़ा भारत की ओर आना चाहा। पर जैसा हमको प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों से मालूम होता है कि भारत के पश्चिमोत्तर सीमान्त के परे ही चन्द्रगुप्त ने उसे हरा दिया। बहुत से पूर्वीय परशियन साम्राज्य के प्रान्त दे और अपनी कन्या का चन्द्रगुप्त से ब्याह कर उसने इस मौर्य

सम्राट् से सन्धि करली। इसके पश्चात् चन्द्रगुप्त का सेल्कस और दूर-दूर के सम्राटों से अच्छा सम्बन्ध रहा। विदित होता है कि उस समय मौर्य सम्राट् के दूत दूर-दूर के सम्राटों की सभाओं में रखे जाते थे और दूर-दूर के देशों के दूत मौर्य सभा में भी रहते थे। विख्यात यवन दूत मेगस्थनीज़ को सीरीया के सम्राट् सेल्कस ने चन्द्रगुप्त की सभा में भेजा था। यह वही मेगस्थनीज़ है जिसने उस समय के भारत पर एक पुस्तक लिखी थी जिसका पता प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों कि पुस्तकों से मिलता है, और इसी के आधार पर बहुत कुछ उन्होंने भारत सम्बन्धी अपने वृत्तान्त लिखे हैं।

चन्द्रगुप्त के समय की शासन सम्बन्धी उक्त सब बातों से पता चलता है कि एक ओर जनता का सुख और उसकी उन्नति और दूसरी ओर सारे देश को संगठित कर विदेशी आक्रमणों से सुरक्षित रखना मौर्य शासन के मुख्य लक्ष थे।

अध्याय १८

चन्द्रगुप्त की कीर्ति सम्बन्धी उत्कीर्ण लेख ।

विभिन्न विद्वानों ने दहली के समीप महरोली लोह स्तम्भ के लेख[1] के सम्राट् चन्द्र की कितने ही व्यक्तियों से ऐकता स्थापित करने का प्रयत्न किया है, पर अधिकतर अब तक विद्वानों की राय में चन्द्र य तो चन्द्रगुप्त प्रथम, गुप्त राजवंश का स्थापक है, य चन्द्रगुप्त द्वितीय उक्त चन्द्रगुप्त का पोत्र तथा प्रसिद्ध समुद्रगुप्त का पुत्र है। हम नीचे संक्षेप में इन मतों के पक्षीय तथा विपक्षीय प्रमाणों को उपस्थित करते हैं।

---

(१) दहली के पास कुतुबमिनार के समीप महरोली ग्राम में एक पुराने लोहे के स्तम्भ पर नीचे का लेख खुदा है।

यस्योद्वर्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रून्समेत्यागता—
न्वङ्गेष्वाहववर्तिनोऽभिलिखिता खड्गेन कीर्तिर्भुजे।
तीर्त्वा सप्त मुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाह्लिका
यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्वीर्यानिलैर्दक्षिण. ॥ १ ॥

खिन्नस्येव विसृज्य गां नरपतेर्गामाश्रितस्येतरां
मूर्त्या कर्मजितावनिं गतवतः कीर्त्या स्थितस्य क्षितौ।
शान्तस्येव महावने हुतभुजो यस्य प्रतापो महा—
न्नाद्याप्युत्सृजति प्रणाशितरिपोर्यत्नस्य शेषः क्षितिम् ॥ २ ॥

चन्द्र और चन्द्रगुप्त प्रथम

कुछ अंशों में लोह स्तम्भ के लेख से चन्द्र और चन्द्रगुप्त प्रथम में ऐकता की अभिव्यक्ति होती है। उनके नामों में सादृश्य होने के अतिरिक्त सम्राट् चन्द के समान ही चन्द्रगुप्त ने अपने भुजबल से अपने राज्य की स्थापना की। उक्त लेख की लिपि विद्वानों ने प्रारम्भिक गुप्त काल की बताई है। परन्तु इन दोनों के एक ही व्यक्ति होने में निम्न कठिनाईयां उपस्थित होती हैं।

(१) चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा स्थापित राज्य का विस्तार चन्द के साम्राज्य की अपेक्षा बहुत थोड़ा था। यह स्वीकार करलेना नितान्त असम्भव है कि चन्द्रगुप्त ने वंगदेश, पश्चिमोत्तर और दक्षिण भारत पर विजय प्राप्त की, जैसा कि लोह स्तम्भ के चन्द ने की थी। अलाहबाद के स्तम्भ में दी हुई समुद्रगुप्त की विजयों की सूची से यह सिद्ध होता है कि उसके पिता चन्द्रगुप्त के राज्य का विस्तार बहुत ही कम था। और उसके छोटे से राज्य की तुलना चन्द्र द्वारा विजित विशाल साम्राज्य से कदापि नहीं की जा सकती है।

(२) लोह स्तम्भ के लेख के अनुसार चन्द्र ने अपने ही उद्योग से विजित एक विशाल साम्राज्य पर दीर्घ काल तक राज

प्राप्तेन स्वभुजार्जितं च सुचिरं चैकाधिराज्यं क्षितौ
चन्द्राह्वेन समग्रचन्द्रसदृशीं वक्त्रश्रियं बिभ्रता।
तेनायं प्रणिधाय भूमिपतिना भावेन विष्णौ मतिं
प्रांशुर्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः॥ ३॥

किया, परन्तु जैसा कि प्राप्त प्रमाणों से ज्ञात होता है चन्द्रगुप्त प्रथम ने केवल थोड़े ही दिन राज किया था।

(३) चन्द्रगुप्त प्रथम के लेख में अवश्य ही उस की वंश परम्परा की ओर संकेत किया जाता। इसके अतिरिक्त उस में लिच्छवियों की कन्या से उसका महत्वपूर्ण वैवाहिक सम्बन्ध का भी संकेत मिलता, जिसका उसके सिक्कों तक में भी बहुत ज़ोर दिया गया है। गुप्तवंशीय राजाओं का यह नियम था कि वे अपने उत्कीर्ण लेखों में अपने प्रख्यात वंशजों का उल्लेख अवश्य करते थे, और वे इस में बड़े गौरव और हर्ष का अनुभव करते थे।

चन्द्र और चन्द्रगुप्त द्वितीय

चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा शासित साम्राज्य चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्य से अधिक विस्तृत था, और उसके शासन काल की अवधि भी अधिक थी। इन तथ्यों से इस विचार की पुष्टि हो सकती है कि लोह स्तम्भ के उत्कीर्ण लेख का चन्द्र चन्द्रगुप्त द्वितीय हो। परन्तु इस धारणा के प्रतिकूल भी बहुत ही पुष्ट प्रमाण हैं।

(१) चन्द्रगुप्त द्वितीय जिस विशाल प्रदेश पर शासन करता था, उस पर उसने स्वयं विजय प्राप्त नहीं की थी, जैसी कि चन्द्र ने की थी। चन्द्रगुप्त द्वितीय को उसके पिता समुद्रगुप्त का बड़ा साम्राज्य प्राप्त हुआ था। उसने गुजरात के क्षत्रपों की पश्चिम मालवा में शक्ति को नष्ट किया, और कदाचित् यही उसकी एक बड़ी विजय थी। अभी तक ऐसी कोई भी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त नहीं हुई है, जिससे कि यह अभिव्यक्त हो, कि

चन्द्र और चन्द्रगुप्त प्रथम

कुछ अंशों में लोह स्तम्भ के लेख से चन्द्र और चन्द्रगुप्त प्रथम में ऐकता की अभिव्यक्ति होती है। उनके नामों में सादृश्य होने के अतिरिक्त सम्राट् चन्द्र के समान ही चन्द्रगुप्त ने अपने भुजबल से अपने राज्य की स्थापना की। उक्त लेख की लिपि विद्वानों ने प्रारम्भिक गुप्त काल की बताई है। परन्तु इन दोनों के एक ही व्यक्ति होने में निम्न कठिनाईयां उपस्थित होती हैं।

(१) चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा स्थापित राज्य का विस्तार चन्द्र के साम्राज्य की अपेक्षा बहुत थोड़ा था। यह स्वीकार करलेना नितान्त असम्भव है कि चन्द्रगुप्त ने वंगदेश, पश्चिमोत्तर और दक्षिण भारत पर विजय प्राप्त की, जैसा कि लोह स्तम्भ के चन्द्र ने की थी। अलाहबाद के स्तम्भ में दी हुई समुद्रगुप्त की विजयों की सूची से यह सिद्ध होता है कि उसके पिता चन्द्रगुप्त के राज्य का विस्तार बहुत ही कम था। और उसके छोटे से राज्य की तुलना चन्द्र द्वारा विजित विशाल साम्राज्य से कदापि नहीं की जा सकती है।

(२) लोह स्तम्भ के लेख के अनुसार चन्द्र ने अपने ही उद्योग से विजित एक विशाल साम्राज्य पर दीर्घ काल तक राज

प्राप्तेन स्वभुजार्जितं च सुचिरं चैकाधिराज्यं क्षितौ
चन्द्राह्वेन समग्रचन्द्रसदृशीं वक्त्रश्रियं बिभ्रता।
तेनायं प्रणिधाय भूमिपतिना भावेन विष्णौ मतिं
प्रांशुर्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः ॥ ३ ॥

किया, परन्तु जैसा कि प्राप्त प्रमाणों से ज्ञात होता है चन्द्रगुप्त प्रथम ने केवल थोड़े ही दिन राज किया था।

(३) चन्द्रगुप्त प्रथम के लेख में अवश्य ही उस की वंश परम्परा की ओर संकेत किया जाता। इसके अतिरिक्त उस में लिच्छवियों की कन्या से उसका महत्वपूर्ण वैवाहिक सम्बन्ध का भी संकेत मिलता, जिसका उसके सिक्कों तक में भी बहुत जोर दिया गया है। गुप्तवंशीय राजाओं का यह नियम था कि वे अपने उत्कीर्ण लेखों में अपने प्रख्यात वंशजों का उल्लेख अवश्य करते थे, और वे इस में बड़े गौरव और हर्ष का अनुभव करते थे।

चन्द्र और चन्द्रगुप्त द्वितीय

चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा शासित साम्राज्य चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्य से अधिक विस्तृत था, और उसके शासन काल की अवधि भी अधिक थी। इन तथ्यों से इस विचार की पुष्टि हो सकती है कि लोह स्तम्भ के उत्कीर्ण लेख का चन्द्र चन्द्रगुप्त द्वितीय हो। परन्तु इस धारणा के प्रतिकूल भी बहुत ही पुष्ट प्रमाण हैं।

(१) चन्द्रगुप्त द्वितीय जिस विशाल प्रदेश पर शासन करता था, उस पर उसने स्वयं विजय प्राप्त नहीं की थी, जैसी कि चन्द्र ने की थी। चन्द्रगुप्त द्वितीय को उसके पिता समुद्रगुप्त का बड़ा साम्राज्य प्राप्त हुआ था। उसने गुजरात के क्षत्रपों की पश्चिम मालवा में शक्ति को नष्ट किया, और कदाचित् यही उसकी एक बड़ी विजय थी। अभी तक ऐसी कोई भी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त नहीं हुई है, जिससे कि यह अभिव्यक्त

चन्द्रगुप्त द्वितीय ने दक्षिण भारत में युद्ध किया। परन्तु लोह स्तम्भ के निम्न लेख से यह स्पष्ट है कि चन्द्र ने दक्षिण भारत में युद्ध कर उसको विजय किया।

" यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्वीर्यानिलैर्दक्षिणः "।

इसी के समान ऐसी भी कोई सामग्री प्राप्त नहीं है जिससे कि यह ज्ञात हो कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सिन्ध नद के पश्चिमी प्रदेशों पर कोई विजय प्राप्त की। दूसरी ओर उक्त उत्कीर्ण लेख की निम्न पंक्ति से यह स्पष्ट है कि चन्द्र ने उस ओर भी विजय प्राप्त की थी।

" तीर्त्वा सप्त मुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाह्लिका "।

(२) जैसा कि हम चन्द्रगुप्त प्रथम के बारे में ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, गुप्तवंश के उत्कीर्ण लेखों में गुप्त सम्राटों की प्रमुख वंशावली दी गयी है, जैसे कि समुद्रगुप्त के विख्यात अलाहबाद के स्तम्भ पर, परन्तु महरोली के लोह स्तम्भ के लेख में चन्द्र की वंशावली पर कुछ भी नहीं कहा गया है।

(३) महरोली लोह स्तम्भ की वर्णमाला का समय निर्धारित करते हुए लगभग सब ही विद्वानों ने उस लेख के लिखे जाने का समय प्रारम्भिक गुप्त काल निश्चय किया है। श्रीयुत दिस्कालकर का भी हाल में यही मत है कि " इस तथ्य (चन्द्र और चन्द्रगुप्त द्वितीय एक व्यक्ति थे) के प्रतिकूल हमें यह भी प्रमाण मिलता है कि इस उत्कीर्ण लेख के वर्ण चन्द्रगुप्त द्वितीय के उत्कीर्ण लेखों से पूर्व के हैं "। फ्लीट के अनुसार इस लेख

(२) Sanskrit Inscriptions, पृ० १, भाग २, पृ० २०.

के वर्ण बहुत; कुछ समुद्रगुप्त के अलाहबाद के स्तम्भ में उत्कीर्ण लेख के वर्णों से मिलते-जुलते है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए हम मि. एलन के निम्न कथन के समर्थन करने को विवश हो जाते हैं कि "न केवल चन्द्र और चन्द्रगुप्त द्वितीय के एक ही व्यक्ति होने का कोई यथार्थ प्रमाण मिलता है, प्रत्युत यह लेख गुप्तवंश के किसी भी सम्राट् के लिये नहीं हो सकता"[१]।

महरोली लोह स्तम्भ के उक्त लेख के विषय में यह प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है कि क्या यह लेख स्तम्भ निर्माणकर्ता चन्द्र के पश्चात् का है या उसी के समय का। यदि वह लेख निर्माणकर्ता के पश्चात् का नहीं है, और स्वयं चन्द्र के जीवन काल में ही उत्कीर्ण किया गया था, तो निसन्देह उसकी वर्णमाला से प्रमाणित होता है कि चन्द्र य तो चन्द्रगुप्त प्रथम या चन्द्रगुप्त द्वितीय हो। परन्तु यदि वह लेख चन्द्र के संसार से विदा होजाने के बाद का है तो चन्द्र न तो चन्द्रगुप्त प्रथम न द्वितीय हो सकता है, और तब अवश्य ही यह गुप्त काल के पहिले का कोई शक्तिशाली सम्राट् है। इस प्रकार महरोली लोह स्तम्भ का उत्कीर्ण लेख, स्तम्भ निर्माणकर्ता के पश्चात् का है या नहीं, यह प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण हो जाता है। अधिकतर विद्वानों का मत है कि यह लेख स्तम्भ निर्माणकर्ता के पश्चात् का है, पर हाल ही में दो एक विद्वानों ने इस निशकर्ष पर सन्देह प्रकट किया है। परन्तु

(१) Catalogue of the Coins of the Gupta Dynasty पृ. ३८.

चन्द्रगुप्त द्वितीय ने दक्षिण भारत में युद्ध किया। परन्तु लोह स्तम्भ के निम्न लेख से यह स्पष्ट है कि चन्द्र ने दक्षिण भारत में युद्ध कर उसको विजय किया।

"यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्वीर्यानिलैर्दक्षिणः"।

इसी के समान ऐसी भी कोई सामग्री प्राप्त नहीं है जिससे कि यह ज्ञात हो कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सिन्ध नद के पश्चिमी प्रदेशों पर कोई विजय प्राप्त की। दूसरी ओर उक्त उत्कीर्ण लेख की निम्न पंक्ति से यह स्पष्ट है कि चन्द्र ने उस ओर भी विजय प्राप्त की थी।

"तीर्त्वा सप्त मुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाह्लिका"।

(२) जैसा कि हम चन्द्रगुप्त प्रथम के बारे में ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, गुप्तवंश के उत्कीर्ण लेखों में गुप्त सम्राटों की प्रमुख वंशावली दी गयी है, जैसे कि समुद्रगुप्त के विख्यात अलाहबाद के स्तम्भ पर, परन्तु महरोली के लोह स्तम्भ के लेख में चन्द्र की वंशावली पर कुछ भी नहीं कहा गया है।

(३) महरोली लोह स्तम्भ की वर्णमाला का समय निर्धारित करते हुए लगभग सब ही विद्वानों ने उस लेख के लिखे जाने का समय प्रारम्भिक गुप्त काल निश्चय किया है। श्रीयुत दिस्कालकर का भी हाल में यही मत है कि "इस तथ्य (चन्द्र और चन्द्रगुप्त द्वितीय एक व्यक्ति थे) के प्रतिकूल हमें यह भी प्रमाण मिलता है कि इस उत्कीर्ण लेख के वर्ण चन्द्रगुप्त द्वितीय के उत्कीर्ण लेखों से पूर्व के हैं"। फ्लीट के अनुसार इस लेख

(२) Sanskrit Inscriptions, पु. १, भाग २, पृ. १०,

के वर्ण बहुत, कुछ समुद्रगुप्त के अलाहबाद के स्तम्भ में उत्कीर्ण लेख के वर्णों से मिलते-जुलते हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए हम मि. एलन के निम्न कथन के समर्थन करने को विवश हो जाते हैं कि "न केवल चन्द्र और चन्द्रगुप्त द्वितीय के एक ही व्यक्ति होने का कोई यथार्थ प्रमाण मिलता है, प्रत्युत वह लेख गुप्तवंश के किसी भी सम्राट् के लिये नहीं हो सकता।"[१]।

महरोली लोह स्तम्भ के उक्त लेख के विषय में यह प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है कि क्या यह लेख स्तम्भ निर्माणकर्ता चन्द्र के पश्चात् का है या उसी के समय का। यदि वह लेख निर्माणकर्ता के पश्चात् का नहीं है, और स्वयं चन्द्र के जीवन काल में ही उत्कीर्ण किया गया था, तो निसन्देह उसकी वर्णमाला से प्रमाणित होता है कि चन्द्र या तो चन्द्रगुप्त प्रथम या चन्द्रगुप्त द्वितीय हो। परन्तु यदि वह लेख चन्द्र के संसार से विदा होजाने के बाद का है तो चन्द्र न तो चन्द्रगुप्त प्रथम न द्वितीय हो सकता है, और तब अवश्य ही यह गुप्त काल के पहिले का कोई शक्तिशाली सम्राट् है। इस प्रकार महरोली लोह स्तम्भ का उत्कीर्ण लेख, स्तम्भ निर्माणकर्ता के पश्चात् का है या नहीं, यह प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण हो जाता है। अधिकतर विद्वानों का मत है कि यह लेख स्तम्भ निर्माणकर्ता के पश्चात् का है, पर हाल ही में दो एक विद्वानों ने इस निष्कर्ष पर सन्देह प्रकट किया है। परन्तु

(१) Catalogue of the Coins of the Gupta Dynasty पृ. ३८.

लोह स्तम्भ के निम्न कथनों के कारण हम यह विचारने के लिये विवश हो जाते हैं कि यह विरुदावली एक ऐसे राजा की है जिसकी कि मृत्यु लेख के उत्कीर्ण होने से बहुत पूर्व हो चुकी थी।

(१) लेख के पहिले श्लोक का यह भाव कि चन्द्र की वीरता से दक्षिण सागर की वायु अब भी सुवासित है एक जीवित अधिपति के लिये प्रयुक्त नहीं हो सकता।

(२) दूसरे श्लोक में भी लिखा है कि उसका शत्रुओं का विनाशकारी शौर्य और पराक्रम जो उसकी महान् वीरता की स्मृति कराता है, अब भी पृथ्वी पर वर्तमान है"। इससे भी विदित होता है कि लेख के उत्कीर्ण होने के पहिले ही चन्द्र मर चुका था। एक जीवित प्रभावशाली सम्राट् के लिये उक्त कथन बहुत अनुचित होगा।

(३) उक्त श्लोक में एक उपमा भी दी गयी है जोकि एक ऐसे राजा की कीर्तियों के विवरण के लिये उपयुक्त है जिसकी कि मृत्यु हो गयी हो। वह उपमा इस प्रकार है। दावानल के ताप (जो उसके शान्त होने के पश्चात् तक वर्तमान रहता है) के समान अब भी चन्द्र का प्रताप इस पृथ्वी पर

---

(४) यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्वीर्यानिलैर्दक्षिणः

(५) खिन्नस्येव विसृज्य गां नरपतेर्गामाश्रितस्येतरां
मूर्त्या कर्म जितावनीं गतवतः कीर्त्या स्थितस्य क्षितौ।
शान्तस्येव महावने हुतभुजो यस्य प्रतापो महानाद्याप्युत्सृ-
जति प्रणाशितरिपोर्यत्नस्य शेषः क्षितिम्।

वर्तमान है। एक जीवित सम्राट् के प्रताप की भुजी हुई अग्नि के ताप से उपमा देना कितना अनुचित होगा।

(४) जिस साधारणरूप से इस लेख में चन्द्र की विजयो का विवरण दिया गया है उससे भी यह ज्ञात होता है कि लोह स्तम्भ पर यह लेख चन्द्र के बहुत पश्चात् उत्कीर्ण किया गया था। उसमें विजित राजाओं का नाम तक भी नहीं दिया गया है। हम इस विषय में इसकी तुलना समुद्रगुप्त के अलाहबाद स्तम्भ के लेख से कर सकते हैं। उसमें विभिन्न राजाओं, जातियो और देशों के, जिनपर समुद्रगुप्त ने विजय प्राप्त की, नाम दिये हैं।

(५) हमें लोह स्तम्भ की निम्न पंक्तियों में इसका स्पष्ट ही प्रमाण मिल जाता है कि जिस समय यह लेख उत्कीर्ण किया गया था उस समय चन्द्र जीवित न था।

> खिन्नस्येव विसृज्य गां नरपतेर्गामाश्रितस्येतरां
> मूर्त्या कर्म जितावनीं गतवत कीर्त्या स्थितस्य क्षितौ।

यदि हम ध्यानपूर्वक विचार करें तो ज्ञात होगा कि महरोली स्तम्भ के सारे लेख की सुन्दरता इसी तथ्य में है कि यह एक ऐसे सम्राट् की कीर्तियों का वर्णन है जो कि लेख के उत्कीर्ण होने से बहुत पूर्व इस संसार को छोड़ चुका हो।

उक्त विवेचन से निम्नलिखित बातें प्रकाश में आती हैं।

(१) जिस समय लोह स्तम्भ पर उक्त लेख उत्कीर्ण किया गया था चन्द्र जीवित न था, प्रत्युत इस से बहुत पूर्व उस की मृत्यु हो चुकी थी।

(२) वर्णमाला की शैली के अनुसार यह लेख बहुत कुछ निश्चितरूप से प्रारम्भिक गुप्त काल का निर्धारित होता है। इस दशा में गुप्तवंशीय राजाओं के बाद के ऐसे सम्राट् को खोजना निरर्थक है जो कि चन्द्र हो सके।

(३) यह भी नितान्त असम्भव है कि उत्कीर्ण लेख किसी गुप्त सम्राट् के लिये लिखा गया हो।

(४) तब हम यह निष्कर्ष निकालने के लिये विवश हो जाते हैं कि यह लेख किसी ऐसे महान् सम्राट् की विरुदावली है, जो गुप्तवंश से पूर्व राज कर चुका था, और उस लोह स्तम्भ का निर्माण स्वयं उसने ही कराया था, परन्तु उस स्तम्भ पर उक्त लेख गुप्त काल में खोदा गया, सम्भवतः यह समुद्रगुप्त के शासन काल में उस पर उत्कीर्ण किया गया था।

चन्द्र और चन्द्रगुप्त मौर्य।

उक्त कथोपकथन से हमारे सन्मुख यह प्रश्न उपस्थित होता है कि महरौली लोह स्तम्भ का सम्राट् चन्द्र गुप्तकाल के पूर्व का कौन व्यक्ति हो सकता है! निम्न प्रमाणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि लोह स्तम्भ के उक्त लेख का चन्द्र और चन्द्रगुप्त मौर्य एक ही व्यक्ति थे।

समान अपने पूर्वजों से कोई बड़ा साम्राज्य प्राप्त नहीं हुआ था, प्रत्युत उसने अपने भुजबल से ही लगभग समस्त भारत पर विजय प्राप्त की थी।

पिछले अध्यायों में हम यह बता आये हैं कि चन्द्र के समान चन्द्रगुप्त ने भी दक्षिण भारत पर विजय प्राप्त की थी। हम यह भी बता चुके हैं कि चन्द्रगुप्त के साम्राज्य का विस्तार आधुनिक अफ़ग़ानिस्तान से भी परे तक था। उसमें पूर्वीय एशिया तथा मध्य एशिया (आधुनिक रूसी और चीनी तुर्किस्तान) का बहुत सा भाग सम्मिलित था। इस प्रकार यदि चन्द्रगुप्त और चन्द्र में ऐक्यता स्थापित हो जाती है, तो लोह स्तम्भ के लेख का यह कथन कि चन्द्र ने सिन्ध नद में सम्मिलित होनेवाली सात नदियों[६] को पार कर वाह्लीकों (बैक्ट्रिया) पर विजय प्राप्त की, एक अखण्ड सत्य हो जाता है। लोह स्तम्भ के लेख के अनुसार चन्द्र ने वंग देश के शत्रुओं का उन्मूलन किया। इस से चन्द्रगुप्त द्वारा मगध के नन्दों के उन्मूलन तथा उससे और अधिक पूर्व के प्रदेशों पर उसकी विजय का अभिप्राय हो सकता है। इस प्रकार यदि लोह स्तम्भ का लेख विश्वासनीय

---

(६) प्राचीन इतिहासकार टालेमी के अनुसार सिन्ध नद का सहायक निम्न लिखित सात नदिया थीं। "कोए" [संस्कृत कुभा या आधुनिक काबुल नदी], स्वास्तो [आधुनिक स्वात], सिन्ध नद का उद्गम भाग, विपास्पी [आधुनिक झेलम], सन्दवल [संस्कृत चन्द्रभागा या आधुनिक चिनाब], एडरिस [आधुनिक रावी], बिबासिस [आधुनिक व्यास]. Ptolmy's Ancient India पृ. ८१.

(२) वर्णमाला की शैली के अनुसार यह लेख बहुत कुछ निश्चितरूप से प्रारम्भिक गुप्त काल का निर्धारित होता है। इस दशा में गुप्तवंशीय राजाओं के बाद के ऐसे सम्राट् को खोजना निरर्थक है जो कि चन्द्र हो सके।

(३) यह भी नितान्त असम्भव है कि उत्कीर्ण लेख किसी गुप्त सम्राट् के लिये लिखा गया हो।

(४) तब हम यह निष्कर्ष निकालने के लिये विवश हो जाते हैं कि यह लेख किसी ऐसे महान् सम्राट् की विरुदावली है, जो गुप्तवंश से पूर्व राज कर चुका था, और उस लोह स्तम्भ का निर्माण स्वयं उसने ही कराया था, परन्तु उस स्तम्भ पर उक्त लेख गुप्त काल में खोदा गया, सम्भवतः यह समुद्रगुप्त के शासन काल में उस पर उत्कीर्ण किया गया था।

चन्द्र और चन्द्रगुप्त मौर्य।

उक्त कथोपकथन से हमारे सन्मुख यह प्रश्न उपस्थित होता है कि महरौली लोह स्तम्भ का सम्राट् चन्द्र गुप्तकाल के पूर्व का कौन व्यक्ति हो सकता है! निम्न प्रमाणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि लोह स्तम्भ के उक्त लेख का चन्द्र और चन्द्रगुप्त मौर्य एक ही व्यक्ति थे।

(१) चन्द्रगुप्त सम्बन्धी जिन ऐतिहासिक तथ्यों से हम परिचित हैं वे लोह स्तम्भ के लेख के अल्प तथा अभिव्यक्तरूप से सत्य चन्द्र सम्बन्धी विवरण में ज्यों के त्यों घटित होते हैं। यह तथ्य तो निर्विवाद है कि चन्द्रगुप्त को भी चन्द्र के

समान अपने पूर्वजों से कोई बड़ा साम्राज्य प्राप्त नहीं हुआ था, प्रत्युत उसने अपने भुजबल से ही लगभग समस्त भारत पर विजय प्राप्त की थी।

पिछले अध्यायों में हम यह बता आये हैं कि चन्द्र के समान चन्द्रगुप्त ने भी दक्षिण भारत पर विजय प्राप्त की थी। हम यह भी बता चुके हैं कि चन्द्रगुप्त के साम्राज्य का विस्तार आधुनिक अफ़गानिस्तान से भी परे तक था। उसमें पूर्वीय परशिया तथा मध्य एशिया (आधुनिक रूसी और चीनी तुर्किस्तान) का बहुत सा भाग सम्मिलित था। इस प्रकार यदि चन्द्रगुप्त और चन्द्र में ऐकता स्थापित हो जाती है, तो लोह स्तम्भ के लेख का यह कथन कि चन्द्र ने सिन्ध नद में सम्मिलित होनेवाली सात नदियों[६] को पार कर वाह्लीकों (य बेक्ट्रिया) पर विजय प्राप्त की, एक अखण्ड सत्य हो जाता है। लोह स्तम्भ के लेख के अनुसार चन्द्र ने वंग देश के शत्रुओं का उन्मूलन किया। इस से चन्द्रगुप्त द्वारा मगध के नन्दों के उन्मूलन तथा उससे और अधिक पूर्व के प्रदेशों पर उसकी विजय का अभिप्राय हो सकता है। इस प्रकार यदि लोह स्तम्भ का लेख विश्वासनीय

(६) प्राचीन इतिहासकार टालेमी के अनुसार सिन्ध नद की सहायक निम्न लिखित सात नदिया थीं। " कोए " [संस्कृत कुभा या आधुनिक काबुल नदी], स्वास्तो [आधुनिक स्वात], सिन्ध नद का उद्गम भाग, विपास्पी [आधुनिक झेलम]; सन्दबल [संस्कृत चन्द्रभागा या आधुनिक चिनाब], एड्रिस [आधुनिक रावी], बिबासेस [आधुनिक ब्यास]. *Ptolmy's Ancient India.* पृ. ८१.

और एक वस्तुतः शक्तिशाली सम्राट् की विजय पर दिया गया ठीक ही बयान है, और यह बढ़ा-चढ़ा कर नहीं लिखा गया है, तो यह लेख प्रसिद्ध मौर्य वंश के महान् संस्थापक चन्द्रगुप्त के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति के लिये इतने उपयुक्त और सम्यक्‌रूप से प्रयुक्त नहीं हो सकता।

(२) लोह स्तम्भ के लेख के सम्राट् चन्द्र के समान ही चन्द्रगुप्त ने भी एक विशाल साम्राज्य पर बहुत समय तक शासन किया, और उसके बहुत दिनों बाद तक उसकी कीर्ति चारों ओर व्याप्त थी।

(३) लोह स्तम्भ के लेख से हमें ज्ञात होता है कि इस स्तम्भ की स्थापना स्वयं चन्द्र ने की थी, इस आकार और प्रकार के लोह स्तम्भ का निर्माण उस समय की शिल्पकला की उन्नत दशा का द्योतक है। मौर्य काल में कला और शिल्प की उन्नत दशा का प्रमाण अशोक के स्तम्भों, और उस समय के भवनावशेषों से भी ज्ञात होता है। जैसा कि कौटल्य के अर्थशास्त्र से पता चलता है चन्द्रगुप्त के समय धातुओं के परिष्कृत करने, जिस में लोहे का गलाना भी सम्मिलित था, की विद्या बहुत ही उन्नत दशा में थी। लोहे का प्रयोग भी मौर्य काल में पर्याप्तरूप से प्रचलित था। पाटलीपुत्र में मौर्य समय के अवशेषों के बीच आज भी कितनी फौलाद की बनी चीज़ें प्राप्त हुई हैं। अर्थशास्त्र से यह भी पता चलता है कि चन्द्रगुप्त के समय में इस देश के महत्वपूर्ण खानिक स्थानों पर

केन्द्रीय नियन्त्रण होता था। इसी लिये इस अद्वितीय लोह स्तम्भ का निर्माण सरल हो गया होगा। ईसवीं संवत् की प्रारम्भिक शताब्दियों में भारत में आये हुए टौयग और सुंग–यन नामक चीनी यात्रियों ने गन्धार की राजधानी में भी इतने ही बड़े एक अन्य लोह स्तम्भ का जिक्र किया है जिसका निर्माण काल उन्होंने बुद्ध भगवान् के निर्वाण से ३०० वर्ष पश्चात् बताया है। यह समय मौर्य काल का है।

(४) दहली के निकट ही जहा लोह स्तम्भ स्थित है, दो अशोक के स्तम्भ प्राप्त हुए हैं। यह कोई आश्चर्यपूर्ण बात नहीं कि अशोक से पूर्व उसके पितामह चन्द्रगुप्त ने उसी भाग में एक लोह स्तम्भ की स्थापना की हो।

(५) जैसा कि मुद्राराक्षस नाटक के निम्न उद्धरण से ज्ञात होता है केवल लोह स्तम्भ के लेख में ही चन्द्रगुप्त मौर्य को संक्षिप्तरूप चन्द्र से अभिहित नहीं किया गया है प्रत्युत साहित्यिक परम्परा में भी उसे चन्द्र कह कर पुकारा है।

चाणक्य--

त्वयि स्थिते वाक्यपतिवत्सुबुद्धौ
भुनक्तु गामिन्द्र इवैष चन्द्रः ॥ १६ ॥

(अंक ७ हिलब्रेन्ड संस्करण).

(६) समस्त भारतीय परम्पराओं में, ब्राह्मणीय, जैन, तथा बौद्ध और इनके साथ ग्रीक परम्परा में भी इस महान् व्यक्ति के पूर्वजों की कोई चर्चा नहीं हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि महरोली स्तम्भ लेख के उत्कीर्ण होने के समय भी उसकी वंशावली

से लोग अभिज्ञ हो गये थे। इसी कारण उस में इसका कोई ज़िक्र नहीं हुआ हो।

(७) यह बात तो हम ऊपर बता ही चुके हैं कि लोह स्तम्भ तो चन्द्र ने स्वयं बनवाया था, परन्तु उसकी मृत्यु के बहुत समय पश्चात् गुप्त काल में उसपर उक्त लेख खुदवाया गया। कौशम्बी (अलाहबाद के पास आधुनिक कौसम) में आज तक भी मौर्य समय का एक पत्थर का स्तम्भ खड़ा है जिस पर उस समय का कोई लेख नहीं खुदा है। सम्भव हो सकता है कि इसी प्रकार चन्द्रगुप्त ने ही लोह स्तम्भ बनवाया था पर उसपर उसने कोई लेख न खुदवाया हो।

अब यह प्रश्न रह जाता है कि यदि चन्द्र और चन्द्रगुप्त मौर्य एक हैं तो चन्द्रगुप्त के इतने समय पश्चात् उसके बनवाये हुए लोह स्तम्भ पर उसकी प्रशंसा में किसने यह लेख खुदवाया। विद्वानों के इस कथन से कि उक्त लोहे के स्तम्भ के लेख की वर्ण-शैली समुद्रगुप्त के उत्कीर्ण लेख की वर्णशैली से बहुत मिलती जुलती है शंका उत्पन्न होती है कि लोहे के स्तम्भ का लेख भी समुद्रगुप्त के समय में ही लिखा गया हो। और ऐसा होना बहुत सम्भव है क्योंकि गुप्त काल और विशेषकर समुद्रगुप्त के समय में चन्द्रगुप्त मौर्य की किर्ति पुनः जागृत होती है। जैसा की जयसवाल ने लिखा है "गुप्त काल में चन्द्रगुप्त मौर्य सम्बंधी परम्परा का पुनः उदय हुआ। शाही दम्पत्तियों ने अपने पुत्रों के नाम उसके नाम पर रखे। विशाखदत्त ने अपने नाटक मुद्राराक्षस में

उसकी तुलना विष्णु से की है। कौटल्य के चन्द्रगुप्त के राज-नियमों को नारद स्मृति में क़रीब क़रीब ज्यों का त्यों ही उल्लिखित कर दिया गया है। कामंदकीय नीतिसार में चन्द्रगुप्त के अर्थ-शास्त्र को श्लोक बद्ध कर दिया गया है। उस समय के शासकों की यह आकांक्षा भी रही थी कि पाटलीपुत्र से चन्द्रगुप्त मौर्य के विशाल साम्राज्य के समान पुनः एक साम्राज्य की स्थापना की जाय, और यह बहुत कुछ पूरी भी हुई"[७]। विदित होता है कि एक विजेता के नाते स्वयं समुद्रगुप्त चन्द्रगुप्त मौर्य के चरित्र से बहुत ही प्रभावान्वित हुआ। यदि यह लेख लोह स्तम्भ पर समुद्रगुप्त द्वारा उत्कीर्ण कराया गया हो, तो सम्भवतः यह भारतवर्ष के सबसे महान् विजेता और शासक के लिये समुद्रगुप्त की प्रशंसात्मक श्रद्धांजली है।

---

(७) Hindu Polity. प्रथम भाग पृ. २१५.

अध्याय १९

चन्द्रगुप्त की महानता।

एकपक्षीय हो योरोपीय विद्वानों ने एलेक्ज़ेन्डर को मनमना ऊपर चढा दिया है। उसको संसार के विजेता आदि पदवी से आभूषित किया है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, हर एक जाति अपने अपने छोटे छोटे विजेताओं को भी ऐसी ही पदवी देती है। जैसा कि हम प्रारम्भिक अध्यायों में बता आये हैं यदि विपक्षरूप से देखा जाय तो एलेक्ज़ेन्डर एक उन्मादित के समान विशाल परशिया के साम्राज्य के भीतर ही केवल इधर उधर मारामारी करता हुआ घूमता रहा। यवनों का परशियन साम्राज्य से घरेलू झगडा था एलेक्ज़ेन्डर के पूर्व की शताब्दियों में परशियन सम्राटों ने कितने ही यवन प्रांतों को अपने आधीन करलिया था और उनसे कर वसूल करते थे। परशियन साम्राज्य की शक्ति अब हीन हो रही थी। इस अवनत दशा में भी एक समय के कुरु और दरयवुश के पूरे परशियन साम्राज्य पर भी एलेक्ज़ेन्डर विजय नहीं प्राप्त कर सका[1]। उस साम्राज्य के बाहर भारत में

---

(१) Cambridge Ancient History Vol VI पृ ४२६ के निम्न कथन की हमारे उक्त कथन से तुलना करो, 'वास्तव में एलेक्ज़ेन्डर न अपने पूर्व के विशाल परशियन साम्राज्य पर भी पूरा विजय प्राप्त न की थी। हेराक्टिया स लेकर कैस्पियन सागर तक का उस साम्राज्य का एक बडा भाग उससे स्वतंत्र था"।

आते ही उसकी क्या दशा हुई इसका हम ऊपर उल्लेख कर ही आये हैं। परशियन साम्राज्य के जिन भागों पर उसने विजय भी प्राप्त की उन तक को वह थोड़े समय के लिये भी अपने हाथ में न रख सका। क्रूर बच्चे के हाथ में प्याले के सामान उसके हाथ में आते ही परशियन साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया। वास्तव में एलेक्ज़ेन्डर की संसार के प्रमुख साम्राज्य निर्माणकर्ताओं और शासकों में गणना हो ही नहीं सकती। वह एक बहादुर सिपाही अवश्य था। पर उसकी क्रूरता के कारण उसका स्थान तो संसार के बड़े बड़े आततायियों और अत्याचारियों में है। उसकी क्रूरता की बहुत सी बातें हम इस पुस्तक के प्रारम्भिक अध्यायों में लिख चुके हैं। यहां हम उसकी एक अन्तिम क्रूरता का और उदाहरण देते हैं। भारत से लौटने पर जब हेफ़ेसियन नामक उसके सेनापति और मित्र की मृत्यु होगई तो शोक और क्रोधाग्नि से प्रेरित हो उसने सारे घोड़ों और खच्चरों के बाल कटवा डाले और फिर काकेशस के ऊपर स्वयं चढ़ाई कर हेफ़ेसियन की यादगार में वहां के सबही पुरुषों को जो बिलकुल निर्दोष थे गिनगिनकर मरवा डाला। इसके थोड़े ही दिनों पश्चात् अति की मदिरापान और विषयों में लिप्त वह स्वयं भी संसार से चल बसा।

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो उस समय का सबसे महान् व्यक्ति तो चन्द्रगुप्त था। थोड़ी बहुत ऐतिहासिक सामग्री जो उसके विषय में हमको मिलती है और जिसका उल्लेख हम पिछले अध्यायों में कर आये हैं उससे हमको मालूम होता है कि वह एक विलक्षण पुरुष था। इस ऐतिहासिक तथ्य में सन्देह ही नहीं कि

उसको पुश्तैनी तो कोई बड़ा राज्य मिला ही नहीं था। परन्तु अपने ही बाहुबल से उसने एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया और लगभग चौबीस वर्ष उस पर अकंटक शासन भी किया। अपनी युवावस्था में ही उसने इस विशाल साम्राज्य का अधिपत्य ग्रहण किया। इस बात का पता हम को चन्द्रगुप्त सम्बन्धी प्राचीन योरोपीय और भारतीय दोनों वृत्तान्तों से मिलता है। प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों से हमको पता चलता है कि एलेक्ज़ेन्डर के आक्रमण के समय चन्द्रगुप्त एक युवक ही था। पर जैसा कि हम पिछले अध्यायों में दिखा आये हैं एलेक्ज़ेन्डर के भारत से बाहर जाने के पहिले ही और बहुतकर स्वयं एलेक्ज़ेन्डर के विरुद्ध भी, उसने यवन सेना को पद्दलित करना शुरू कर दिया था, और भारत से एलेक्ज़ेन्डर के बाहर जाते तक वह पश्चिमोत्तर भारत और अफ़ग़ानिस्तान आदि का अधीश्वर बन गया। इसके थोड़े ही समय पश्चात् उसने पूर्व में मगध तक अपना साम्राज्य बढ़ा लिया। यह मुद्राराक्षस से स्पष्ट हो जाता है कि मगध के जीतने के समय भी वह युवावस्था ही में था[२]। मगध के जीतने के कुछ समय पश्चात् उसने भारत के अन्य भागों पर भी विजय प्राप्त की।

---

(२) मुद्राराक्षस के निम्न कथनों की तुलना करो।

(अ) सुविश्रब्धैरङ्गैः पथिषु विषमेष्वप्यचलता
चिरं धुर्येणोढा गुरुरपि भुवो यस्य गुरुणा।
धुरं तामेवोच्चैर्नववयसि वोढुं व्यवसितो
मनस्वी दम्यत्वात् स्खलति न न दुःखं महति च ॥३॥ अं.३.

चन्द्रगुप्त बहुत वीर और साहसी था। प्राचीन योरोपीय इतिहासकार जस्टिन ने लिखा है कि अपने बड़े हाथी की पीठ पर बैठ कर चन्द्रगुप्त सदैव अपनी सेना के आगे युद्ध करता था। अपनी इस वीरता और साहस के कारण और इतनी युवावस्था में प्रथम तो एलेक्ज़ेन्डर के विरुद्ध पुनः सेलूकस के ऊपर विजय प्राप्त करने के कारण समस्त पश्चिम भारत और पंजाब की वीर जातियों पर और साथ साथ अपने साम्राज्य के अन्तर्गत परशियन, यवन और मध्य एशिया की अन्य वीर जातियो पर उसने अपना पूरा अधिपत्य जमा लिया। इस से हमको यह भी विदित हो जाता है कि किस प्रकार इस भारत के महान् सम्राट् के "अब से दो हज़ार वर्ष से भी पहिले पश्चिम की ओर भारत की वह असली और वैज्ञानिक सीमा हाथ पड़ी जिसकी ओर आज तक अंग्रेज़ी शासन सदैव हसरत भरी निगाहों से देखता है और जिस पर सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों के मुग़ल सम्राटों ने भी पूरी तौर पर क़ाबू न पाया था"[३]।

चन्द्रगुप्त न केवल एक बहुत बड़ा विजेता ही था परन्तु वह एक बहुत बड़ा शासक भी था। साम्राज्य की शक्ति बढ़ाने और जन साधारण की सुविधा के लिये उसने कितने ही बड़े बड़े काम किये। जैसा हमको प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों से

---

(२) बाल एव हि लोकेन संभावित महोन्नतिः।
क्रमेणाल्प वान्राज्यं यूथैश्वर्यमिव द्विपः ॥ १३ ॥ अं. ७.

(३) Vincent Smith Early History of India पृ. १२०,

उसको पुश्तैनी तो कोई बड़ा राज्य मिला ही नहीं था। परन्तु अपने ही बाहुबल से उसने एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया और लगभग चौबीस वर्ष उस पर अकंटक शासन भी किया। अपनी युवावस्था में ही उसने इस विशाल साम्राज्य का अधिपत्य ग्रहण किया। इस बात का पता हम को चन्द्रगुप्त सम्बन्धी प्राचीन योरोपीय और भारतीय दोनों वृत्तान्तों से मिलता है। प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों से हमको पता चलता है कि एलेक्जेन्डर के आक्रमण के समय चन्द्रगुप्त एक युवक ही था। पर जैसा कि हम पिछले अध्यायों में दिखा आये हैं एलेक्जेन्डर के भारत से बाहर जाने के पहिले ही और बहुतकार स्वयं एलेक्जेन्डर के विरुद्ध भी, उसने यवन सेना को पददलित करना शुरू कर दिया था, और भारत से एलेक्जेन्डर के बाहर जाते तक वह पश्चिमोत्तर भारत और अफ़गानिस्तान आदि का अधीश्वर बन गया। इसके थोड़े ही समय पश्चात् उसने पूर्व में मगध तक अपना साम्राज्य बढ़ा लिया। यह मुद्राराक्षस से स्पष्ट हो जाता है कि मगध के जीतने के समय भी वह युवावस्था ही में था[२]। मगध के जीतने के कुछ समय पश्चात् उसने भारत के अन्य भागों पर भी विजय प्राप्त की।

---

(२) मुद्राराक्षस के निम्न कथनों की तुलना करो।

(अ) सुविधब्धैरङ्गै पथिषु विषमेष्वप्यचलता
चिरं धुर्येणोढा गुरुरपि भुवो यास्य गुरुणा।
धुरं तामेवोच्चैर्नववयसि वोढु व्यवसितो
मनस्वी दम्यत्वात् स्खलति न न दु खं महति च ॥३॥ अं.२.

चन्द्रगुप्त बहुत वीर और साहसी था। प्राचीन योरोपीय इतिहासकार जस्टिन ने लिखा है कि अपने बड़े हाथी की पीठ पर बैठ कर चन्द्रगुप्त सदैव अपनी सेना के आगे युद्ध करता था। अपनी इस वीरता और साहस के कारण और इतनी युवावस्था में प्रथम तो एलेक्ज़ेन्डर के विरुद्ध पुनः सेलूकस के ऊपर विजय प्राप्त करने के कारण समस्त पश्चिम भारत और पंजाब की वीर जातियों पर और साथ साथ अपने साम्राज्य के अन्तर्गत परशियन, यवन और मध्य एशिया की अन्य वीर जातियो पर उसने अपना पूरा अधिपत्य जमा लिया। इस से हमको यह भी विदित हो जाता है कि किस प्रकार इस भारत के महान् सम्राट् के "अब से दो हज़ार वर्ष से भी पहिले पश्चिम की ओर भारत की वह असली और वैज्ञानिक सीमा हाथ पड़ी जिसकी ओर आज तक अंग्रेज़ी शासन सदैव हसरत भरी निगाहों से देखता है और जिस पर सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों के मुग़ल सम्राटों ने भी पूरी तौर पर क़ाबू न पाया था"[२]।

चन्द्रगुप्त न केवल एक बहुत बड़ा विजेता ही था परन्तु वह एक बहुत बड़ा शासक भी था। साम्राज्य की शक्ति बढ़ाने और जन साधारण की सुविधा के लिये उसने कितने ही बड़े बड़े काम किये। जैसा हमको प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों से

---

(१) बाल एव हि लोकेन संभावित महोन्नतिः।
क्रमेणारूढ वान्राज्यं यूथैश्वर्यमिव द्विपः ॥ १२ ॥ सं. ७.

(२) Vincent Smith Early History of India. पृ. १२०,

उसको पुश्तैनी तो कोई बड़ा राज्य मिला ही नहीं था। परन्तु अपने ही बाहुबल से उसने एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया और लगभग चौबीस वर्ष उस पर अकंटक शासन भी किया। अपनी युवावस्था में ही उसने इस विशाल साम्राज्य का अधिपत्य ग्रहण किया। इस बात का पता हम को चन्द्रगुप्त सम्बन्धी प्राचीन योरोपीय और भारतीय दोनों वृत्तान्तों से मिलता है। प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों से हमको पता चलता है कि एलेक्ज़ेन्डर के आक्रमण के समय चन्द्रगुप्त एक युवक ही था। पर जैसा कि हम पिछले अध्यायों में दिखा आये हैं एलेक्ज़ेन्डर के भारत से बाहर जाने के पहिले ही और बहुतकर स्वयं एलेक्ज़ेन्डर के विरुद्ध भी, उसने यवन सेना को पददलित करना शुरू कर दिया था, और भारत से एलेक्ज़ेंडर के बाहर जाते तक वह पश्चिमोत्तर भारत और अफ़गानिस्तान आदि का अधीश्वर बन गया। इसके थोड़े ही समय पश्चात् उसने पूर्व में मगध तक अपना साम्राज्य बढ़ा लिया। यह मुद्राराक्षस से स्पष्ट हो जाता है कि मगध के जीतने के समय भी वह युवावस्था ही में था[२]। मगध के जीतने के कुछ समय पश्चात् उसने भारत के अन्य भागों पर भी विजय प्राप्त की।

---

(२) मुद्राराक्षस के निम्न कथनों की तुलना करो।

(अ) सुविश्रब्धैरङ्गैः पथिषु विषमेष्वप्यचलता
चिरं धुर्येणोढा गुरुरपि भुवो यस्य गुरुणा।
धुरं तामेवोच्चैर्नववयसि वोढुं व्यवसितो
मनस्वी दम्यत्वात् स्खलति च न दुःखं वहति च ॥३॥ अ.२

चन्द्रगुप्त बहुत वीर और साहसी था। प्राचीन योरोपीय इतिहासकार जस्टिन ने लिखा है कि अपने बड़े हाथी की पीठ पर बैठ कर चन्द्रगुप्त सदैव अपनी सेना के आगे युद्ध करता था। अपनी इस वीरता और साहस के कारण और इतनी युवावस्था में प्रथम तो एलेक्ज़ेन्डर के विरुद्ध पुनः सेलूकस के ऊपर विजय प्राप्त करने के कारण समस्त पश्चिम भारत और पंजाब की वीर जातियों पर और साथ साथ अपने साम्राज्य के अन्तर्गत परशियन, यवन और मध्य एशिया की अन्य वीर जातियों पर उसने अपना पूरा आधिपत्य जमा लिया। इस से हमको यह भी विदित हो जाता है कि किस प्रकार इस भारत के महान् सम्राट् के "अब से दो हज़ार वर्ष से भी पहिले पश्चिम की ओर भारत की वह असली और वैज्ञानिक सीमा हाथ पड़ी जिसकी ओर आज तक अंग्रेज़ी शासन सदैव हसरत भरी निगाहों से देखता है और जिस पर सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों के मुग़ल सम्राटों ने भी पूरी तौर पर क़ाबू न पाया था"[२]।

चन्द्रगुप्त न केवल एक बहुत बड़ा विजेता ही था परन्तु वह एक बहुत बड़ा शासक भी था। साम्राज्य की शक्ति बढ़ाने और जन साधारण की सुविधा के लिये उसने कितने ही बड़े बड़े काम किये। जैसा हमको प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों से

(१) यात्र एव हि लोकेन सभावित महोत्सतिः।
कमेणइड वानाज्यं दूपेश्वर्यमिव द्विषे ॥ १२॥ अ० ७

(२) Vincent Smith Early History of India पृ० १२५,

पता चलता है उसने पश्चिमोत्तर भारत से लेकर पाटलीपुत्र तक वृक्षों से ढकी और थोड़ी थोड़ी दूर पर कुए और ठहरने के स्थान आदि के साथ सड़क बनवाई। इस प्रकार की और भी कितनी ही सड़कें उसने बनवाई। आबपाशी के लिये सौराष्ट्र में सुदर्शन नाम की झील के समान, जिसका पता रुद्रदामन के ईसवीं संवत् की प्रारम्भिक शताब्दि के खुदवाये हुए गिरनार के लेख से मिलता है, उसने कितनीही झीलें और नहरें भी बनवाई। उसके पाटलीपुत्र में बनवाये हुए राजमहलों की शोभा परशियन सम्राटों के राजमहलों, जो उस समय के संसार में सबसे सुन्दर गिने जाते थे, से भी कहीं बढ़चढ़ कर थी। जैसा हम पीछे लिख आये हैं चन्द्रगुप्त सम्बन्धी प्राचीन योरोपीय और भारतीय वृत्तान्तों के आधार पर हमको मालूम होता है कि सारे देश में नापने और तोलने के ठीक ठीक पैमाने बनवाने, सोने और चान्दी के सिक्के बनवाने, व्यापार के लिये सड़कें और जगह जगह पर नगर और बाज़ार बनवाने, देश के अन्दर और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बढ़ाने, स्थान स्थान पर आबपाशी के लिये तालाब और नहरें आदि खुदवानें, खानों और जंगलों की पैदावार को ठीक ठीक निकलवाने, पशुओं की नसलों को अच्छा करने, मनुष्य और पशुओं के लिये चिकित्सालय खुलवाने, दुष्काल-निवारण का ठीक ठीक प्रबन्ध करने, यतीम बच्चों और स्त्रियों और ग़रीब रोग-ग्रस्त मनुष्यों की मदद करने, स्थान स्थान पर च्य बनवाने, समाज और राष्ट्र के लिये लाभकारी विद्याओं

को बढ़ाने और उनको फैलाने आदि का काम चन्द्रगुप्त के शासन ने अपने हाथ में ले रखा था।

चन्द्रगुप्त के शासन की जब हम इन सब बातों को ध्यान में रखते हैं तो हमें आश्चर्य नहीं होता कि यवन दूत मेगस्थनीज़ ने चन्द्रगुप्त के समय के भारत में राज्य सुव्यवस्था, न्याय, और जन साधारण की खुशहाली की तथा चोरी आदि जुर्मों के उस समय अभाव की इतनी प्रशंसा क्यों की थी। चन्द्रगुप्त के शासन में क्रूरता न थी। सब पर ठीक न्याय होता था। और जन साधारण की उन्नति और खुशहाली ही सम्राट् और उसके शासन का मुख्य लक्ष्य था, यह मुद्राराक्षस में भी कितने स्थानों में स्पष्ट प्रकट किया है[४]।

स्वयं सम्राट् का शासन सम्बन्धी परिश्रम ही उस समय के भारतीय राष्ट्र-शक्ति और उसके सुसंगठन की बुनियाद थी। प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों से हमको पता चलता है कि शासन सम्बन्धी कामों में चन्द्रगुप्त कितना परिश्रम करता था।

---

(४) मुद्राराक्षस के निम्न कथनों की तुलना करो—

(अ) चन्दनदास — शारदनिशासमुद्गतेनेव
पूर्णिमाचन्द्रेण चन्द्रश्रियाधिक नन्दन्ति प्रकृतय । अंक १

(ब) चाणक्य — चन्द्रगुप्तराज्यमिदं न नन्दराज्य । यतो नन्दस्यैवार्थरुचेरर्थसबन्ध प्रीतिमुत्पादयति । चन्द्रगुप्तस्य तु भवतामपरिक्लेश एव । अंक १

(स) पुरुष — चन्द्रगुप्तस्य जनपदे न नृशंसप्रतिपत्ति । अंक ६

पता चलता है उसने पश्चिमोत्तर भारत से लेकर पाटलीपुत्र तक वृक्षों से ढकी और थोड़ी थोड़ी दूर पर कुए और ठहरने के स्थान आदि के साथ सड़क बनवाई। इस प्रकार की और भी कितनी ही सड़कें उसने बनवाई। आबपाशी के लिये सौराष्ट्र में सुदर्शन नाम की झील के समान, जिसका पता रुद्रदामन के ईसवी संवत् की प्रारम्भिक शताब्दि के खुदवाये हुए गिरनार के लेख से मिलता है, उसने कितनीही झीलें और नहरें भी बनवाई। उसके पाटलीपुत्र में बनवाये हुए राजमहलों की शोभा परशियन सम्राटों के राजमहलों, जो उस समय के संसार में सबसे सुन्दर गिने जाते थे, से भी कहीं बढ़चढ़ कर थी। जैसा हम पीछे लिख आये हैं चन्द्रगुप्त सम्बन्धी प्राचीन योरोपीय और भारतीय वृत्तान्तों के आधार पर हमको मालूम होता है कि सारे देश में नापने और तोलने के ठीक ठीक पैमाने बनवाने, सोने और चान्दी के सिक्के बनवाने, व्यापार के लिये सड़कें और जगह जगह पर नगर और बाज़ार बनवाने, देश के अन्दर और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बढ़ाने, स्थान स्थान पर आबपाशी के लिये तालाब और नहरें आदि खुदवाने, खानों और जंगलों की पैदावार को ठीक ठीक निकलवाने, पशुओं की नसलों को अच्छा करने, मनुष्य और पशुओं के लिये चिकित्सालय खुलवाने, दुष्काल–निवारण का ठीक ठीक प्रबन्ध करने, यतीम बच्चों और स्त्रियों और ग़रीब रोग–ग्रस्त मनुष्यों की मदद करने, स्थान स्थान पर न्यायालय बनवाने, समाज और राष्ट्र के लिये लाभकारी विद्याओं

को बढ़ाने और उनको फैलाने आदि का काम चन्द्रगुप्त के शासन ने अपने हाथ में ले रखा था।

चन्द्रगुप्त के शासन की जब हम इन सब बातों को ध्यान में रखते हैं तो हमें आश्चर्य नहीं होता कि यवन दूत मेगस्थनीज़ ने चन्द्रगुप्त के समय के भारत में राज्य सुव्यवस्था, न्याय, और जन साधारण की खुशहाली की तथा चोरी आदि जुर्मों के उस समय अभाव की इतनी प्रशंसा क्यों की थी। चन्द्रगुप्त के शासन में क्रूरता न थी। सब पर ठीक न्याय होता था। और जन साधारण की उन्नति और खुशहाली ही सम्राट् और उसके शासन का मुख्य लक्ष्य था, यह मुद्राराक्षस में भी कितने स्थानों में स्पष्ट प्रकट किया है[४]।

स्वयं सम्राट् का शासन सम्बन्धी परिश्रम ही उस समय के भारतीय राष्ट्र-शक्ति और उसके सुसंगठन की बुनियाद थी। प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों से हमको पता चलता है कि शासन सम्बन्धी कामों में चन्द्रगुप्त कितना परिश्रम करता था।

---

(४) मुद्राराक्षस के निम्न कथनों की तुलना करो—

(अ) चन्दनदास— शारदनिशासमुद्गतेनेव
पूर्णिमाचन्द्रेण चन्द्रश्रियाधिकं नन्दन्ति प्रकृतयः। अंक १

(ब) चाणक्य — चन्द्रगुप्तराज्यमिदं न नन्दराज्यं। यतो नन्दस्यैवार्थरुचेरर्थसंबन्धः प्रीतिमुत्पादयति। चन्द्रगुप्तस्य तु अपरितापरिक्लेश एव। अंक १

(स) पुरुष.— चन्द्रगुप्तस्य जनपदे न नृशंसप्रतिपत्तिः। अंक ६

पता चलता है उसने पश्चिमोत्तर भारत से लेकर पाटलीपुत्र तक वृक्षों से ढकी और थोड़ी थोड़ी दूर पर कुए और ठहरने के स्थान आदि के साथ सड़क बनवाई। इस प्रकार की और भी कितनी ही सड़कें उसने बनवाई। आबपाशी के लिये सौराष्ट्र में सुदर्शन नाम की झील के समान, जिसका पता रुद्रदामन के ईसवी संवत् की प्रारम्भिक शताब्दि के खुदवाये हुए गिरनार के लेख से मिलता है, उसने कितनीही झीलें और नहरें भी बनवाई। उसके पाटलीपुत्र में बनवाये हुए राजमहलों की शोभा परशियन सम्राटों के राजमहलों, जो उस समय के संसार में सबसे सुंदर गिने जाते थे, से भी कहीं बढ़चढ़ कर थी। जैसा हम पीछे लिख आये हैं चन्द्रगुप्त सम्बन्धी प्राचीन योरोपीय और भारतीय वृत्तान्तों के आधार पर हमको मालूम होता है कि सारे देश में नापने और तोलने के ठीक ठीक पैमाने बनवाने, सोने और चांदी के सिक्के बनवाने, व्यापार के लिये सड़कें और जगह जगह पर नगर और बाज़ार बनवाने, देश के अन्दर और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बढ़ाने, स्थान स्थान पर आबपाशी के लिये तालाब और नहरें आदि खुदवाने, खानों और जंगलों की पैदावार को ठीक ठीक निकलवाने, पशुओं की नसलों को अच्छा करने, मनुष्य और पशुओं के लिये चिकित्सालय खुलवाने, दुष्काल-निवारण का ठीक ठीक प्रबन्ध करने, यतीम बच्चों और स्त्रियों और गरीब रोग-ग्रस्त मनुष्यों की मदद करने, स्थान स्थान पर न्यायालय बनवाने, समाज और राष्ट्र के लिये लाभकारी विद्याओं

को बढ़ाने और उनको फैलाने आदि का काम चन्द्रगुप्त के शासन ने अपने हाथ में ले रखा था।

चन्द्रगुप्त के शासन की जब हम इन सब बातों को ध्यान में रखते हैं तो हमें आश्चर्य नहीं होता कि यवन दूत मेगस्थनीज़ ने चन्द्रगुप्त के समय के भारत में राज्य सुव्यवस्था, न्याय, और जन साधारण की खुशहाली की तथा चोरी आदि जुर्मों के उस समय अभाव की इतनी प्रशंसा क्यों की थी। चन्द्रगुप्त के शासन में क्रूरता न थी। सब पर ठीक न्याय होता था। और जन साधारण की उन्नति और खुशहाली ही सम्राट् और उसके शासन का मुख्य लक्ष था, यह मुद्राराक्षस में भी कितने स्थानों में स्पष्ट प्रकट किया है[४]।

स्वयं सम्राट् का शासन सम्बन्धी परिश्रम ही उस समय के भारतीय राष्ट्र-शक्ति और उसके सुसंगठन की बुनियाद थी। प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों से हमको पता चलता है कि शासन सम्बन्धी कामों में चन्द्रगुप्त कितना परिश्रम करता था।

---

(४) मुद्राराक्षस के निम्न कथनों की तुलना करो—

(अ) चन्दनदास — शारदनिशासमुद्गतेनेव
पूर्णिमाचन्द्रेण चन्द्रश्रियाधिकं नन्दन्ति प्रकृतयः। अंक १

(ब) चाणक्य — चन्द्रगुप्तराज्यमिदं न नन्दराज्यम्। यतो नन्दस्यैवार्थ-रुचेरर्थसम्बन्धः प्रीतिमुत्पादयति। चन्द्रगुप्तस्य तु भवतामपरिक्लेश एव। अंक १

(स) पुरुष — चन्द्रगुप्तस्य जनपदे न कृतघ्नाः प्रतिवसन्ति। अंक ६

मेगस्थनीज़ के कथनों के आधार पर स्ट्रेबो ने लिखा है कि चन्द्रगुप्त दिन में नहीं सोता था। वह न केवल युद्ध के समय ही राजमहल से बाहर निकलता था, परन्तु प्रतिदिन वह न्यायालय जाया करता था, जहां निरन्तर कितने ही घंटे बैठ कर वह काम करता था। जन साधारण भी स्वयं उसके सामने अपनी असुविधायें पेश कर सकते थे। किसी को भी उसके पास तक पहुंचने की रोक-टोक न थी। अर्थशास्त्र में दी हुई सम्राट् की निम्न दिनचर्या से भी यही पता चलता है कि किस प्रकार वह दिनभर शासन सम्बन्धी बातों में लगा रहता था। वह बहुत प्रातःकाल उठता था, और प्रथम राजमहल की बातों की देख-रेख कर वह न्यायालय में प्रवेश करता था, जहां जन साधारण उससे मिल कर अपने ऊपर आई हुई विपत्ति की बात उसको बताते थे। किसी को भी उससे मिलने के लिये बहुत देर इन्तज़ार न करनी पड़ती थी। इसके बाद उसके स्नान बन्दना और भोजन आदि का समय था। दोपहर को वह राज मन्त्रियों से शासन सम्बन्धी आवश्यक बातों पर परामर्श करता था। फिर दो घंटे खेल आदि में व्यतीत होते थे। तीसरे पहर वह सेना की देख रेख करता था। और सायंकाल को बाहर के आये राजाओं व राजदूतों से मिलता था।

चन्द्रगुप्त एक विशाल साम्राज्य का युवक अधिपति होते हुए भी दृढ़निश्चय के साथ और बिना भूल किये शासन का विधान करता था, यह बात बड़ी सुन्दरता के साथ मुद्राराक्षस के निम्न कथन में बताई गई है।

सुविधब्धैराशै पथिपु विषमेष्वप्यचलता
चिरंधुर्येणेढा गुरुरपि भुवो यास्य गुरुणा ।
धुरं तामेवोच्चैर्नववयसि वोढुं व्यवसितो
मनस्वी दम्यत्वात् स्खलति न न दु:ख वहित च ॥ ३ ॥
अंक ३

अन्यथा भी मुद्राराक्षस के अनुसार चन्द्रगुप्त में एक महान् सम्राट् के सब ही गुण थे। जैसा कि उक्त नाटक के निम्न कथन से मालूम होता है चन्द्रगुप्त को एक शक्तिशाली साम्राज्य के सिंहासन पर बैठा देख कर चाणक्य के आनन्द का तो पार नहीं रहता था।

चाणक्य — (नाट्येनाहृयावलोक्य च सहर्षमात्मगतम्।) अये सिंहासन-मध्यास्ते वृषल । साधु साधु ।
नन्दैर्विमुक्तमनपेक्षितराजवृत्तै
अध्यासित च वृषलेन वृषेण राज्ञाम् ।
सिंहासन सदृशपार्थिवसङ्गत च
प्रीतिं त्रयद्विगुणयन्ति गुणा ममैते ॥ २ ॥ अ. ३.

राक्षस भी, जो उसका इतना कट्टर वैरी था, उसके गुणों पर मोहित हो गया था। उसकी युवावस्था में ही इतनी उन्नति देखकर उसने ठीक ही कहा—

बाल एव हि लोकेन सभावितमहोन्नति ।
क्रमेणारूढवान्राज्यं यूथैश्वर्यमिव द्विप ॥ अक ७

और आगे चलकर राक्षस चाणक्य के भाग्य की चन्द्रगुप्त जैसे प्रतिभाशाली सम्राट का पक्ष लेने के कारण सराहना करता है—

सर्वथा स्थाने यशस्वी चाणक्य । कुत ।
द्रव्यं जिगीषुमधिगम्य जडात्मनोऽपि
नेतुर्यशस्विनि पदे नियत प्रतिष्ठा ॥
अद्रव्यमेत्य तु विविक्तनयोऽपि मन्त्री
शीर्णाश्रय पतति कूलजवृक्षवृत्त्या ॥ अंक ७

चन्द्रगुप्त का जो चित्र प्राचीन थोड़े बहुत योरोपीय इतिहासकारों और मुद्राराक्षस आदि में सुरक्षित ऐतिहासिक तथ्यों के पढ़ने से हमारे सामने आता है उससे अवश्य यह प्रतीत होता है कि कौटल्य के अर्थशास्त्र का आदर्श सम्राट् चन्द्रगुप्त ही था। कौटल्य के अनुसार सम्राट् को महाकुलीन, दैव बुद्धि, दीर्घदर्शी, धार्मिक, वीर, उत्साही, दृढनिश्चयी आदि होना चाहिये[५]। और हम यह भी सुगमतापूर्वक अनुमान कर सकते हैं कि कौटल्य के बताये निम्न आदर्श के समान चन्द्रगुप्त ने अपना जीवन बिताया होगा। "राजा का व्रत कर्तव्य के लिये सदा तैयार रहना है, उसका यज्ञ शासन सम्बन्धी कामों को ठीक ठीक करना है। सब प्रजा को एक समान देखना उसका पुण्य है। प्रजाके सुख में उसका सुख है, प्रजा के हित में उसका हित है, उसको अपना नहीं परन्तु प्रजा का ही हित और सुख प्रिय होना चाहिये। राजा को सदैव

(५) महाकुलीनो दैवबुद्धि सत्वसम्पन्नो वृद्धदर्शी धार्मिकः सत्यवागविसंवादकः कृतज्ञ स्थूललक्षो महोत्साहोऽदीर्घसूत्र शक्यसामन्तो दृढबुद्धिरक्षुद्रपरिषत्को विनयकाम इत्याभिगामिका गुणा ।
पु ६ अ. १

अपने कर्तव्यों का पालन करते रहना चाहिये । राजा के आलस्य से ही शासन में सब विकार खड़े होते हैं"[६]। हम सोच सकते हैं कि एक सम्राट् को उस समय प्रजा की उन्नति, हित और सुख के लिये उक्त आदर्श का पालन करना कितना आवश्यक होगा, जब कि उसके हाथ में शासन की पूरी बागडोर रहती थी, और वही राष्ट्र की स्वतंत्रता और शक्ति का केन्द्र होता था।

चन्द्रगुप्त की विजयों, उसके एक विशाल साम्राज्य के निर्माण करने, उसकी सफल शासन प्रणाली और उसके समय देश और प्रजा की उन्नति और हित के बड़े बड़े कार्यों का जब हम ध्यान करते हैं तो हमें सुगमतापूर्वक विदित होता है कि वह न केवल भारतीय राजनैतिक इतिहास का सबसे महान् व्यक्ति है वरन् संसार के इतिहास के इनेगिने सबसे महान् और सफल विजेताओं, राष्ट्रनिर्माताओं और शासकों में भी उसका स्थान बहुत उच्च है। जिस साम्राज्य पर चन्द्रगुप्त शासन करता था वह वर्तमान भारतीय साम्राज्य से लगभग दुगना था। जैसा

---

(६) राज्ञो हि व्रतमुत्थानं यज्ञः कार्यानुशासनम् ।
दक्षिणा वृत्तिसाम्यं च दीक्षितस्याभिषेचनम् ॥
प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम् ।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ॥
तस्मान्नित्योत्थितो राजा कुर्यादर्थानुशासनम् ।
अर्थस्य मूलमुत्थानमनर्थस्य विपर्ययः ॥
अनुत्थाने ध्रुवो नाशः प्राप्तस्यानागतस्य च ।
प्राप्यते फलमुत्थानाल्लभते चार्थसंपदम् ॥
अर्थशास्त्र पु १ अ. १९.

कि हम पिछले अध्यायों में बता आये हैं उसके साम्राज्य में लग-भग समस्त भारत, समस्त अफ़ग़ानिस्तान, पूर्वी परशिया का एक बड़ा भाग, चीनी और रूसी तुर्किस्तान सहित मध्य-एशिया भी सम्मिलित थे। सेल्यूकस को हराने के अतिरिक्त चन्द्रगुप्त ने ही एलेक्ज़ेन्डर को भारत से बाहर खदेड़ निकाला था। इन सब बातों का बिना अनुभव करते हुए भी विन्सेन्ट स्मिथ ने चन्द्रगुप्त के लिये निम्न लिखित श्रद्धांजली भेंट की है। "अठारह वर्ष के अन्दर ही चन्द्रगुप्त ने पंजाब और सिंध से मेसेडोनियन सेनाओं को बाहर निकाल दिया। विजयी सेल्यूकस को पराजित कर उसका मान मर्दन किया, और भारत और साथ साथ एरियाना के अधिकांश भाग को अपने अधिकार में कर लिया। उसके इन कृत्यों के कारण हम उसे बड़ी सरलता से इतिहास के सबसे महान् और सफल अधिपतियों की पंक्ति में रख सकते हैं"[७]।

एलेक्ज़ेन्डर और उसके बाद सेल्यूकस पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् चन्द्रगुप्त अपने समय के संसार में सब से शक्तिशाली व्यक्ति के रूप में हमारे सन्मुख उपस्थित होता है। यदि वह अपनी शक्ति को पश्चिम की ओर ही केन्द्रस्थ कर देता तो उसे कोई रोक न सकता और वह विशाल परशियन साम्राज्य को, जो उस समय एलेक्ज़ेन्डर के संहारक प्रहार के कारण अन्तिम सांसे ले रहा था, पुनः उसके प्राचीन शौर्य पर पहुंचा देता। वह इजिप्ट, मेसेडन और ग्रीस के सुदूर प्रान्तों पर भी पुनः परशिया का प्रभुत्व स्थापित करने में सफल होता। परन्तु उस

(७) Early History of India (3 rd. Ed.) पृ. १२९.

दशा में परशिया के लोग उसे अपना ही एक व्यक्ति कहते। और इस प्रकार सम्भवतः भारतवर्ष उसे सदा के लिये खो देता। दैवयोग से उसने एक विशाल भारतीय साम्राज्य स्थापित करने का विचार किया, और थोड़े ही दिनों में उसे पूरा भी किया। उसका यह उद्योग प्राचीन संसार के सब से बड़े राजनैतिक कार्यों में से एक था। जैसा कि विंसेन्ट स्मिथ ने लिखा है, "चन्द्रगुप्त तथा उसके मन्त्री के हृदयों में जो एक भारतीय साम्राज्य स्थापित करने की निर्धारणा हुई, उन्होंने उसे चौबीस वर्ष के अन्दर ही कार्यरूप में परिणत कर दिया। इस साम्राज्य का विस्तार एक समुद्र से लेकर दूसरे समुद्र तक था। और इसके अन्तर्गत समस्त भारत और अफ़ग़ानिस्तान आदि थे। इतिहास में बहुत ही कम ऐसे राजनैतिक कृत्य मिल सकेंगे। केवल एक साम्राज्य ही स्थापित नहीं कर लिया गया था, प्रत्युत उसकी व्यवस्था भी उपयुक्त ढंग से की गयी थी। पाटलीपुत्र से संचालित सम्राट् की आज्ञा, सिन्ध नद तथा अरब सागर के किनारे के देशों तक अनुल्लङ्घित पालन की जाती थी। प्रथम भारतीय सम्राट् के कौशल द्वारा स्थापित इतना विशाल साम्राज्य सुरक्षितरूप से उसके पुत्र तथा पौत्र को भी मिला"[८]।

भारत ने भी सदैव ही अपने इतिहास के इस सब से प्रसिद्ध और प्रमुख व्यक्ति को सम्मान और श्रद्धा के साथ स्मरण किया है। बौद्ध परम्परा के अनुसार वह कुलीन और एक महान् सम्राट् था जिसने बिना किसी प्रतिद्वंद्वी के राज किया। मंजुश्री मूलकल्प में उसे उपयुक्तरूप से "महायोगी सत्यसन्धश्च धर्मात्मा स महीपतिः"

(८) Asoka. पृ. १०४,

कहा है। मुद्राराक्षस में सुरक्षित ब्राह्मणीय परम्परा में उसे विष्णु का अवतार तक कहा गया है, जिसकी भुजाओं की मलेक्षों से बचने के लिये पृथ्वी ने शरण ली—

> वाराहीमात्मयोनेस्तनुमतनुबलामास्थितस्यानुरूपां
> यस्य प्राक्पोत्रकोटिं प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री।
> म्लेच्छैरुद्वेज्यमाना भुजयुगमधुना पीवरं राजमूर्तेः
> स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीं पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः॥२१॥ अंक ७.

मलेक्ष जिनसे चन्द्रगुप्त ने देश की रक्षा की असंदिग्धरूप से एलेक्ज़ेन्डर और तत्पश्चात् सेल्यूकस की पराजयों की ओर संकेत करते हैं। प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक परम्पराओं में भी कृतयुग के निर्माता के रूप में चन्द्रगुप्त का उपयुक्त स्वागत किया है। वह बाद में होने वाले हिन्दू सम्राटों के लिये आदर्शरूप हुआ। गुप्तवंश के राजाओं ने मौर्यवंश के प्रसिद्ध संस्थापक के नाम पर अपने पुत्रों के नाम रखना बड़े मान की बात समझी। स्वयं महान् समुद्रगुप्त बहुत अंशों में चन्द्रगुप्त मौर्य के कार्यों से प्रभावान्वित हुआ। सम्भवतः उसने ही इस महान् व्यक्ति के प्रति प्राचीन दहली के खण्डरों के बीच में आज भी खड़े हुए लोह स्तम्भ पर अमिट पंक्तियों में अपनी श्रद्धांजली छोड़ी। वह आज तक चन्द्रगुप्त मौर्य की विशाल विजयों और उसकी महानता का मूक प्रमाण धारण किये खड़ी हैं।

अध्याय २०

चन्द्रगुप्त के उत्तराधिकारी ।

विन्दुसार और अशोक ।

चन्द्रगुप्त का शासन काल २४ वर्ष था, जो ३२५ बी. सी. लेकर ३०१ बी. सी. तक रहा। उसके पश्चात् उसका पुत्र विन्दुसार सिंहासनारूढ़ हुआ। विन्दुसार को अटूट और पूर्णरूप से सुसंगठित दशा में विशाल मौर्य साम्राज्य प्राप्त हुआ। विन्दुसार के विषय में अभी तक कुछ अधिक पता नहीं चला है। पर इस में सन्देह नहीं कि वह भी एक शक्तिशाली सम्राट् होगा, क्यों कि उसके समय में भी विशाल मौर्य साम्राज्य ज्यों का त्यों बना रहा, और जैसा कि तिब्बतीय इतिहासकार तारानाथ से मालूम होता है उसने भी स्वयं कुछ नये प्रदेश जीत कर मौर्य साम्राज्य में मिलाये। प्राचीन योरोपीय इतिहासकारों से भी मालूम होता है कि विन्दुसार का, जिन्होंने उसको अमित्रघात कहकर पुकारा है, सीरीया आदि के सम्राटों से घनिष्ट सम्बन्ध था, और वह आपस में एक दूसरे के यहा दूत भेजा करते थे। विन्दुसार का शासन काल २८ वर्ष था, जो ३०१ बी. सी. से लेकर २७३ बी. सी. तक रहा।

विन्दुसार के पश्चात् उसका जगत् विख्यात पुत्र अशोक विशाल मौर्य साम्राज्य का पदाधिकारी हुआ। कतिपय बौद्ध ग्रन्थों

से इस महान् सम्राट् के प्रारम्भिक जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है। अपने पिता के समय में ही लगभग पन्द्रह वर्ष की आयु में वह उज्जेन का वाइसराय नियुक्त कर भेजा गया था। जब वह उज्जैन ही में था कि विदिसा (भोपाल के पास आधुनिक भेलसा) की श्रेष्ठी जाति की एक अति सुन्दर देवी नाम की युवती से उसका प्रेम हो गया। वह अशोक के साथ उज्जैन गयी, और वहा उनके पुत्र महेन्द्र और पुत्री सघमित्रा का जन्म हुआ। अशोक के राजसिंहासन प्राप्त करने पर देवी विदिसा में ही निवास करने लगी, परन्तु वे दोनों बालक अपने पिता के साथ शाही राजधानी पाटलीपुत्र चले गये।

अपने पिता के शासन काल में अशोक ने सफलतापूर्वक तक्षशिला में एक विद्रोह का दमन किया। उसके कुछ समय पश्चात् तक्षशिला के एक अन्य विद्रोह को दमन करने में उसका बड़ा भाई असफल रहा। इस स अवश्य ही अशोक की असाधारण योग्यता सिद्ध हुई होगी, और कदाचित् इसी कारण उसके अनेक भाईयों में से उसके पिता ने उसे अपना उत्तराधिकारी नियत किया हो। परन्तु बौद्ध विवरणों से ज्ञात होता है कि अशोक ने रक्तपात के पश्चात् सिंहासन प्राप्त किया। सिंहासन प्राप्त करने पर उसके भाईयों ने उसका विरोध किया दिखता है, और सम्भवत उत्तराधिकारित्व के युद्ध में उसका बड़ा भाई सुमन मारा गया हो।

बौद्ध ग्रन्थों से पता चलता है कि अपने पिता की मृत्यु के चार वर्ष पश्चात् अशोक का राज्याभिषेक हुआ। इस से विदित होता है कि लगभग २६९ बी सी उसका अभिषेक काल है। बौद्ध ग्रन्थों से यह भी पता चलता है कि अशोक का अभिषेक बुद्ध निर्वाण

से २१८ वर्ष बाद हुआ। इस प्रकार बुद्ध निर्वाण की तिथि लगभग ४८७ बी. सी. पड़ती है। अशोक का शासन काल ३७ वर्ष अथवा लगभग २३२ बी सी तक रहा।

अशोक के शासन काल की प्रमुख घटनाओ का सब से उत्तम विवरण उसके उत्कीर्ण लेखों में मिलता है। पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त से लेकर उड़ीसा तक सारे उत्तरीय भारत में और इसही प्रकार सारे दक्षिण भारत में भिन्न भिन्न स्थानों पर चट्टानों और पत्थर के स्तम्भो पर यह लेख खुदे हुये हैं। भारतीय तथा योरोपीय विद्वानों के कठिन परिश्रम के पश्चात् आज हमको ज्ञात है कि इन लेखों में क्या लिखा है। यह लेख अनेक बातों में अशोक के व्यक्तित्व को स्पष्टरूप से हमारे सामने रख देते हैं। इनके अनुसार अपने शासन काल के प्रारम्भिक आठ वर्षों में अशोक, शक्तिशाली विजेता तथा महान् शासक अपने पितामह चन्द्रगुप्त के समान, विशाल मौर्य साम्राज्य की शासन व्यवस्था में संलग्न रहा, और इसके साथ ही अपने साम्राज्य को विस्तृत करने का भी प्रयत्न करता रहा। उसने इन आठ वर्षों में सड़कें और कुएँ बनवाये, वृक्ष लगवाये, औषधालय खोले, वृद्धों और दुर्बलों की सहायता आदि का प्रबन्ध किया। उसके प्रारम्भिक शासन काल की सब से महत्व-पूर्ण घटना कलिंग पर उसका आक्रमण था। यह आक्रमण उसके राज्याभिषेक के आठ वर्ष पश्चात् हुआ, और ऐसा प्रतीत होता है कि उसका संचालन स्वय उसने किया। उसने कलिंग पर विजय तो प्राप्त की, परन्तु इस युद्ध के संहार और इसकी विभीषिका से

वह अत्यधिक प्रभावान्वित हुआ, और इसके फलस्वरूप उसके जीवन सम्बन्धी दृष्टि-कोण में बहुत बडा परिवर्तन उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् उसके हृदय में युद्ध के द्वारा विजय प्राप्त करने के सिद्धान्त का स्थान प्रेम और दया द्वारा विजय प्राप्त करने के सिद्धान्त ने ले लिया। अब उसके जीवन का सर्वोच्च ध्येय मनुष्य मात्र की भलाई बन गया, और इस समय से उसके हृदय में अपनी और अपने पड़ौसियों की प्रजा, जिन में सुदूर ग्रीक शासक भी सम्मिलित थे, में स्थायी सम्पन्नता और शान्ति स्थापित करने की उत्कट आकांक्षा का प्रादुर्भाव हुआ। उसने प्रजा की इस सम्पन्नता तथा शान्ति को केवल उपकारी शासन विधानों द्वारा ही नहीं वरन् नैतिक शिक्षाओ द्वारा भी स्थापित करने का प्रयत्न किया।

उसने अपनी समस्त शक्ति को उक्त महान् ध्येय पर केन्द्रित किया। अपनी एक राजकीय घोषणा में उसने लिखा है, "मुझे उद्योगों में संलग्न रहने, और कार्यों के सम्पादन से कभी तृप्ति नही होती। मैं मनुष्यमात्र के सुख और शान्ति की अभिवृद्धि ही अपना कर्तव्य समझता हूं, क्योंकि मनुष्यमात्र के सुख और शान्ति की अभिवृद्धि से अधिक महत्वपूर्ण अन्य कोई कर्तव्य नही है"। प्रत्येक समय दिन हो या रात्रि प्रजा अपनी शिकायतें सुनाने के लिये उसके निकट पहुंच सकती थी। उसने अपने सूबेदारों को ईर्षा, क्रोध, निर्दयता, और आलस्य से दूर रहने और भरसक प्रजा की सेवा करने का पूर्ण आदेश दिया। उसने विशेष कर्मचारियों को समस्त देश का चक्कर लगाते रहने को नियुक्त

पर सब से अधिक ज़ोर देता था। उसका यह दया भाव केवल मनुष्यों पर ही नहीं, वरन् पशु-पक्षियों पर भी था।

अशोक के जीवन में इस महान् परिवर्तन का कारण इतना किसी विशेष सम्प्रदाय का उसपर प्रभाव नहीं था, जितना कि कलिंग युद्ध का। इस युद्ध के पश्चात् अशोक की मानसिक मनोवृत्ति में जो परिवर्तन हुआ, यही उसके बौद्ध धर्म की ओर प्रवृत्त होने का वास्तविक कारण था। उसने सम्भवतः प्रथम धर्म सम्बंधी अपने निजि सिद्धान्त बनाये, और वे बुद्ध भगवान् की शिक्षाओं से बहुत ही निकटरूप से मिलते जुलते थे, जैसा कि उन में समस्त मानव जीवन के प्रति प्रेम तथा दया भाव और मनुष्यमात्र की सेवा। अशोक प्रथम बार कलिंग युद्ध के पश्चात् ही बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट हुआ। ज्यों ज्यों उसकी आयु बढ़ती गयी, त्यों त्यों बुद्ध भगवान् तथा उनकी शिक्षाओं में अशोक की श्रद्धा प्रगाढ़ होती गयी। परन्तु इस के साथ ही साथ अशोक यह भी सदा अनुभव करता रहा कि अन्य धर्मों में भी सचाई है।

उसके उत्कीर्ण लेखों से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि वह उदारतापूर्वक सभी धार्मिक सम्प्रदायों का आदर करता था। उसकी यह हार्दिक इच्छा थी कि समस्त सम्प्रदायों के लोग सभी स्थानों पर निवास करें, क्यों कि उसके अनुसार सभी सम्प्रदायों में संयम और मानसिक पवित्रता का विशेष स्थान था। वह समस्त सम्प्रदायों के अच्छे अच्छे सिद्धान्तों की उन्नति चाहता था, और उसकी हार्दिक इच्छा थी कि सभी भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी आपस में

मिलजुल कर प्रेमपूर्वक रहें, जैसा कि उसने अपनी निम्न राजकीय घोषणा में लिखा है," राजा देवानांप्रिय प्रियदर्शन उपहारों और विभिन्न सम्मानों से समस्त धार्मिक सम्प्रदायों का आदर करता है। परन्तु देवानांप्रिय के निकट इन उपहारों और आदरों का इतना मूल्य नहीं जितना कि विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के सार-तत्व के उपयुक्त परिवर्द्धन का। यदि कोई भी व्यक्ति अपने सम्प्रदाय की प्रशंसा करता है और दूसरे सम्प्रदायों की निन्दा तो वह अपने सम्प्रदाय को बहुत गहरी हानि पहुंचाता है। लोगों को पारस्परिक धार्मिक विचारों को सुनना चाहिये, और उनका मनन करना चाहिये। क्योंकि उसकी हार्दिक इच्छा है कि समस्त धर्म ज्ञान के भण्डार हों, उनके सिद्धान्त पवित्र तथा आडम्बर रहित हों, और समस्त धर्मों के सार-तत्व का परिवर्द्धन अवश्य हो"। अशोक के जिन उत्कीर्ण लेखों में उसके उपहारों की चर्चा हुई है, उन में भी समस्त धार्मिक सम्प्रदायों के प्रति उसकी उदारता प्रकट होती है। यदि उसने स्थान स्थान पर बौद्ध स्तूपों को बनवाया तो आजीवकों को गुफाओं आदि का भी दान दिया। उसकी यह धार्मिक सहिष्णुता की नीति, केवल एक ऐसे जिज्ञासु की जिज्ञासा ही नहीं थी जो कि विभिन्न धार्मिक सप्रदायों के वास्तविक सत्य की खोज में संलग्न हो, *सम्भवतः उसकी यह नीति उतनी ही उस सर्व धर्मावलम्बियों* की समान रक्षा सम्बन्धी राजनिति पर भी आधारित थी जिसकी परम्परा चाणक्य और चन्द्रगुप्त के समय से चली आ रही थी।

हम ऊपर यह विचार प्रकट कर आये हैं कि बौद्ध धर्म की ओर अशोक इतना क्यों झुका। अशोक के ही कारण बौद्ध धर्म, जो उसके समय से पूर्व केवल उत्तर भारत के कुछ भागों तक सीमित था, संसार का एक प्रमुख धर्म बनगया। परन्तु उसके शासन काल के अन्तिम समय की उसकी इस धार्मिक अनुरक्ति ने सम्भवतः चन्द्रगुप्त और चाणक्य द्वारा स्थापित शक्तिशाली साम्राज्य के दृढ़ सूत्र को ढीला कर दिया। अशोक ने उस विशाल और शक्तिशाली साम्राज्य के साधनों को संसार में बुद्ध भगवान् की धार्मिक शिक्षा के प्रसार में लगा दिया। परन्तु वह साम्राज्य संसार को प्रकाशित करने में स्वयं मसाल की लौ के समान समाप्त हो गया। अशोक के पश्चात् ही मौर्य साम्राज्य छोटे छोटे टुकड़ों में विभक्त हो गया।

यदि हम समस्त मानव इतिहास पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि अशोक का संसार के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है। युवावस्था में ही उसने पूर्ण संलग्नता से नये देश जीत कर विशाल मौर्य साम्राज्य में सम्मिलित करने आरम्भ कर दिये। अशोक में, जैसा कि हमें उसके उत्कीर्ण लेखों से ज्ञात होता है, एक ऐसा पराक्रम और उत्साह था, जिसके लक्षण पहिले से ही एक महान् विजेता में दृष्टिगत होते हैं। यदि वह सफलता-पूर्वक कलिंग युद्ध से प्रारम्भ अपने विजयी जीवन को जारी रखता तो अवश्य ही वह भारत से सुदूर देशों पर विजय प्राप्त करता। परन्तु नियति का हाथ तो अन्य ही प्रकार चल रहाथा। उसने

अशोक को एक महान् विजेता होने का विधान ही नहीं रचा था, प्रत्युत उसने उसे विश्व-व्यापी प्रेम, शान्ति और भ्रातृत्व का शाही दूत बनाया। कलिंग युद्ध के पश्चात् उसने इस सन्देश की घोषणा अपनी प्रजा में की, और उसे निकट तथा दूर के अपने पड़ौसी शासकों तक पहुंचाया। वह बड़ी संलग्नता और उत्साह के साथ अपने नवीन आदर्श के प्रचार में लगा। जैसा कि उसकी निम्न राजकीय घोषणा से विदित होता है उसे अपने जीवन काल ही में इस शुभ कार्य में पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई, "कलिंग युद्ध में जितने भी व्यक्ति मारे गये हैं, उनका सौवाँ, या हजारवां भाग भी अब मारा जायगा तो यह महा खेद का विषय होगा, मेरी हार्दिक इच्छा है कि प्राणीमात्र को हानि पहुंचाने से सबको अपने आपको रोकना चाहिये। मैं नैतिक विजय को ही सब से प्रधान विजय समझता हूं, जिसको मैंने अपने लोगों तथा पड़ौसियो में बार बार प्राप्त की है। इसके अतिरिक्त इस विजय की दुंदुभि छैसौ योजन तक बजी है, जहां योन राजा अन्तियोक (सीरिया का एंटिओकस द्वितिय) राज करता है। इसके और भी उस ओर इस विजय का प्रभाव उन प्रदेशों तक पहुंचा जहां चार अधिपति, तुरमय (इजिप्ट का टालेमी द्वितीय), अंटकिनि (मेसेडोनिया का एंटिगोनस गौनट), मक (सीरीन का मेगस) और अलक्षेन्द्र (इपिरस या कारिन्थ का एलेक्ज़ेन्डर) शासन करते हैं। दक्षिण में यह विजय चोड़ और पान्डय देश तक फैली। इस विजय से जिसे मैंने प्रत्येक स्थान पर और अनेक बार प्राप्त किया मुझे

बहुत संतोष हुआ। और निम्न लिखित कारण से यह नैतिक लेख उत्कीर्ण कराया गया है कि मेरे पुत्र और पौत्र कोई नवीन सांग्रामिक विजय प्राप्त करने का विचार न करें। यदि कोई ऐसी विजय प्राप्त करना अनिवार्य ही हो तो उन्हें दया करने और साधारण दण्ड देने में ही प्रसन्नता मिलनी चाहिये और वे नैतिक विजय को ही केवल वास्तविक विजय समझें"।

यह तो हम ऊपर बता ही चुके हैं कि शनैः शनैः अशोक की यह नैतिक शिक्षाएं बौद्ध धर्म के स्वरूप में परिणत होगईं, और संसार में इस उज्ज्वल धर्म का प्रचार विशेषकर अशोक के ही परिश्रम से हुआ। उसने दूर दूर के देशों में इस धर्म का प्रचार करने के लिये कितने ही आचार्यों को भेजा। अशोक के इस परिश्रम के फलस्वरूप धीरे-धीरे बौद्ध धर्म न केवल सारे भारतवर्ष ही में, परन्तु सारे मध्य एशिया, तिब्बत, जापान, सियाम, बर्मा आदि दूर दूर के देशों तक में भी फैल गया। अपनी जन्मभूमि भारत को ही छोड़कर ऊपर के अन्य सब ही देशों में आज तक भी अधिकांश जनता बौद्ध धर्म की ही अनुयायी है। भारत से भी कहने मात्र को बौद्ध धर्म उठ गया है। यहां पर भी बुद्ध भगवान् को सदा बड़ा सम्मान दिया है। हिंदू धर्म ने उनको परमेश्वर का एक अवतार तक माना है, और भारत की सभ्यता और जन साधारण के जीवन पर बुद्ध भगवान् की शिक्षाओं का अमिट प्रभाव पड़ा है।

स्वयं अशोक के पुत्र महेन्द्र ने अपनी युवावस्था में ही राज्य त्याग कर भिक्षु बन सीलोन में जाकर बौद्ध धर्म का प्रचार किया,

जो वहां आज तक भी मौजूद है। अशोक ने अपनी अति प्रिय कन्या संघमित्रा को भी भिक्षुणी का कठिन मार्ग ग्रहण कर इस ही धर्म के प्रचारार्थ सीलोन जाने दिया। संसार में धर्म और सभ्यता के प्रसारार्थ स्वयं सम्राट् को अपने प्रिय पुत्र और पुत्री को अर्पण करने से बढ़कर कौनसी आहुति हो सकती है।

सीरीया और उसके आस पास के देशों में अशोक के समय में जो बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ, उस ही के फलस्वरूप दो शताब्दियों बाद वहां ईसाई धर्म की उत्पत्ति हुई[1]। ईसाई धर्म पर बौद्ध धर्म की पूरी छाप लगी है। इस में सन्देह नहीं कि ईसाई धर्म में दया,प्रेम और सेवा भाव बुद्ध भगवान् की शिक्षाओं का ही एक स्वरूप है। ईसाई धर्म ने बौद्ध धर्म से केवल उसकी नैतिक शिक्षाओ को ही नहीं ग्रहण किया, वरन् उसने संघ व्यवस्था, सामुहिक उपासना तथा पापों की स्वीकृति आदि प्रथाओ को भी उस ही से लिया है। बौद्ध चैत्यों के आधार पर ही प्राचीन ईसाई गिर्जे बनाये जाते थे, और बौद्धों की जातक कथाओं के आधार पर इन गिर्जों में प्रवचन दिये जाते थे। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो बौद्ध धर्म से ही ईसाई धर्म की उत्पत्ति हुई, और यह धर्म बौद्ध धर्म

(१) सीरीया, इजिप्ट आदि देशों में अशोक के समय बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ, इसका केवल अशोक के शिला लेखों से ही नहीं पता चलता, वरन् कुछ दिन हुये इजिप्ट से अशोक के समकालीन वहां के राजा टालेमी के समय का एक पत्थर मिला है, जिसमें बौद्ध धर्म के चिन्ह खुदे हैं। पता चलता है ईसा के पूर्व सीरीया में एसेनस नाम का एक बौद्ध धर्मावलम्बी पंथ भी था।

की ही एक शाखा है। इस प्रकार किसी न किसी रूप से समस्त सभ्य संसार अशोक का अनुग्रहित है।

जिस प्रकार संसार के महान् विजेताओं, साम्राज्य निर्माताओं और शासकों में चन्द्रगुप्त का एक बहुत उच्च स्थान है, उस ही प्रकार संसार के सामाजिक और धार्मिक इतिहास में उसके पौत्र अशोक का प्रमुख स्थान है। एच. जी. वेल्स ने ठीक ही लिखा है, "इतिहास के पृष्ठों में भरे हुए लाखों सम्राटों के नामों में, केवल अशोक का ही नाम उज्ज्वल तारे के समान अकेला और सब से ऊपर चमकता है। योरोप की वाल्गा नदी से लेकर जापान तक उसके नाम का अब तक आदर होता है। चीन तिब्बत और भारत में भी, यदि भारत ने उसके सिद्धान्तों को छोड़ दिया है, अब तक उसकी महानता की परम्परा चली आ रही है। संसार की अधिकांश जनता, जिसने कान्स्टेनटाइन और चार्लेमेन का नाम तक भी नहीं सुना, के हृदय में आज भी अशोक की स्मृति वर्तमान है"। निसन्देह समस्त मानव समाज से क्रूरता दूर कर उसको सभ्य बनाने का अशोक ने ही प्रथम बार महान् और सफल उद्योग किया था।